भील क्रान्ति के प्रणेता : मोतीलाल तेजावत

प्रेमसिंह कांकरिया

राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर (राज.)

प्रकाशन वर्ष : सन् 1985 ई.

मूल्य : तीस रुपये मात्र

प्रकाशक : राजस्थान साहित्य अकादमी,
हिरनमगरी, सेक्टर 4,
उदयपुर-313 001 (राज.)

मुद्रक : मुद्रायन,
सुन्दरवास, उदयपुर-313 001 (राज).



दो शब्द

भील तथा अन्य आदिवासियों के बीच जागृति का शंखनाद फूंकने वाले क्रान्ति-वीर स्वर्गीय श्री मोतीलाल तेजावत पर इस ग्रंथ का प्रकाशन विश्व के सबसे बड़े तथा भारत के सर्वाधिक प्राचीन राजनीतिक संगठन कांग्रेस के शताब्दी वर्ष के अवसर पर किया जा रहा है. राज्य सरकार ने इसके लिए विशेष अनुदान स्वीकृत कर यह कार्य अकादमी को सिपुर्द किया और हमें प्रसन्नता है कि निश्चित समयावधि में यह कार्य सम्पन्न हो गया. भाई श्री प्रेमसिंह कांकरिया ने हमारे अनुरोध पर सामग्री जुटाने तथा निश्चित अवधि में पांडुलिपि तैयार करने में जो श्रमसाध्य कार्य किया है उसके लिये अकादमी उनके प्रति आभारी है. सुप्रसिद्ध पत्रकार और स्वतंत्रता संग्राम सेनानी आदरणीय श्री शोभालाल जी गुप्त ने इसकी भूमिका लिखकर इसके महत्व को और बढा दिया है. गुप्त जी राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम के सक्रिय भागीदार और प्रत्यक्षदर्शी रहे हैं और उन्होने राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम पर बड़े विस्तार से लिखा है. इस कृति की भूमिका लेखन के लिये उन्होंने स्वीकृति दी, इसके लिये अकादमी उनकी आभारी है.

स्वर्गीय मोतीलाल तेजावत ने भीलों की शोषण-पीड़ा को वाणी दी और उन्हें संगठित कर अत्याचारों से जूझते रहने को तैयार किया. उनका एकी आन्दोलन

ऐतिहासिक महत्व का है. जागीरदारों और महाराणा के जोर-जुल्म को उन्होंने चुनौती दी और सामन्ती व्यवस्था को झकझोर कर रख दिया. नीमड़ा गोलीकांड, जिसमें 1200 से अधिक भील गोलियों से भून दिये गये और जो जलियांवाला बाग गोली-कांड से भी अधिक भयावह था, उसका नेतृत्व तेजावत जी ने ही किया था. उनकी हत्या के प्रयत्न हुए लेकिन वे बच निकले. अन्ततः उनके भील-नेतृत्व की विजय हुई और आज मेवाड़ के आदिवासियों में जो सामाजिक-राजनीतिक जागृति दृष्टिगत होती है उसका अधिकांश श्रेय उन्हीं को जाता है.

मुझे तेजावत जी से प्रत्यक्षतः मिलने और उनके साथ कुछ समय काम करने का सौभाग्य मिला. आज वे हमारे बीच नहीं हैं लेकिन उनकी यश-गाथा आज भी आदिवासियों के बीच प्रेरणा का संदेश देती है. ऐसे विराट, महापुरुष के व्यक्तित्व-कृतित्व पर अकादमी इस कृति को प्रकाशित कर गौरवान्वित अनुभव करती है.

इस कृति का स्वागत होगा, यह विश्वास मन को है.

डॉ. प्रकाश आतुर
अध्यक्ष

भूमिका

मेवाड़ की भूमि रत्नप्रसू रही है. उसने ऐसे अनेक नर-नारियो को जन्म दिया जो अपने त्याग और शौर्य के लिए विख्यात हुए और जिनकी कीर्ति पताका आज भी गगन मे लहरा रही है.

राणा प्रताप को आज देश का बच्चा-बच्चा जानता है. उन्होंने अपने समय के प्रबल प्रतापी सम्राट अकबर से मोर्चा लिया. मेवाड़ की स्वतन्त्रता के लिए वन-वन भटके, रणक्षेत्र में शत्रु के दांत खट्टे किये, अमित कष्ट सहे, किन्तु नतमस्तक नही हुए. स्वतन्त्रता प्रेमियो के लिए उनका नाम अक्षय प्रेरणा का स्रोत है.

भक्तिमती मीरां ने मेवाड़ का मुख उज्ज्वल किया. उनकी यह टेर थी कि "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई". उन्होने इस टेर को अन्त तक निभाया. राजकोप भी उन्हें अपनी राह से विचलित नहीं कर पाया.

रानी पद्मिनी ने अपने पतिव्रत धर्म की रक्षा करने के लिए सहस्रों नारियों के साथ जौहर किया और अग्नि की ज्वालाओं में अपने को होम दिया. जब आततायी सेनायें चित्तौड़ दुर्ग पर पहुंची तो उन्हें वहां राख के ढेर के अलावा कुछ नही मिला. इतिहास की यह अनोखी घटना थी.

पन्ना धाय की कहानी त्याग की अनूठी कहानी है. उसने मेवाड की राजगद्दी के अधिकारी बाल महाराणा के प्राण बचाने के लिए अपने शिशु को मृत्यु के मुंह मे धकेल दिया.

मेवाड़ राजाशाही और सामन्तशाही अत्याचारों का मुकाबला करने में भी अग्रणी रहा. बिजोलिया के किसान-सत्याग्रह ने राजस्थान में सर्व प्रथम जन चेतना का शंखनाद किया और एक लम्बी लड़ाई के बाद सफलता प्राप्त की. राजस्थान में सामन्ती शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध अहिंसक आन्दोलनों का जो सिलसिला शुरू हुआ, उसका बहुत कुछ श्रेय बिजोलिया के किसान सत्याग्रह को देना होगा

भील नेता मोतीलाल तेजावत ने राजस्थान के स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियो मे

अग्रणी स्थान प्राप्त किया. भीलों के जिस आन्दोलन के वह कर्णधार रहे, वह राजस्थान के अलावा गुजरात की रियासतों में भी फैल गया था. भीलों की गिनती आदिवासियों में होती है और वे सदियों से शोषण और उत्पीड़न के शिकार थे. वे किसी ऐसे नेता की बाट जोह रहे थे जो उन्हें इस त्रास से मुक्ति दिला सके. श्री तेजावत मेवाड़ के भील क्षेत्र में पैदा हुए और बड़े हुए तो एक जागीरदार के कामदार बन गये. उन्होंने जब स्वयं अपनी आंख से देखा कि मेवाड़ के महाराणा के शिकार के दौरों में बेगार प्रथा के नाम पर लोगों को कितने कष्ट भोगने पड़ते हैं, तो वह राज्य की नौकरी छोड़ कर मैदान में उतर आये, यह सन् 1921 की बात होगी. उस समय देश में अंग्रेजी राज के विरुद्ध असहयोग आन्दोलन का सूत्रपात हो चुका था और उसका असर रियासती लोक मानस पर भी पड़ने लगा था. श्री तेजावत ने सर्व प्रथम मेवाड़ के किसानों का नेतृत्व किया और एक समूह के साथ महाराणा की सेवा में उपस्थित हुए और उनके अभाव-अभियोगों के बारे में, लाग-बेगारों के विरुद्ध आवेदन पत्र प्रस्तुत किया. महाराणा ने किसानों की अधिकांश मांगें स्वीकार कर लीं. यह तेजावत जी की पहली विजय थी.

इस पहली सफलता के बाद श्री तेजावत भील क्षेत्र में भ्रमण करने लगे और भीलों का एक समूह उनके साथ हमेशा रहने लगा. उनका भीलों को एक ही संदेश था कि यदि वे अन्याय और अत्याचार, शोषण और उत्पीड़न से मुक्त होना चाहते हैं तो एकता के सूत्र में आबद्ध हो जाएं. भील आन्दोलन ने "एकी आन्दोलन" का रूप धारण कर लिया. भील एक रहने की शपथ लेने लगे और उस शपथ का पालन करने लगे. भीलों ने श्री तेजावत के मार्ग-दर्शन में यह संकल्प भी लिया कि वह बढ़ा हुआ लगान नहीं देंगे, अनुचित लाग-बेगार नहीं देंगे, और बेठ-बेगार नहीं करेंगे. इस आन्दोलन की हवा तेजी से आस-पास की रियासतों में फैलने लगी.

इस आन्दोलन ने रियासती शासकों को थर्रा दिया उनका सिंहासन डगमगा उठा. कहीं उन्होंने समझौते की भावना का परिचय दिया तो कहीं दमन का आश्रय लिया. एक जागीरदार के आदमियों ने श्री तेजावत को गोली का निशाना बना देने का षड्यन्त्र किया, पर वे इसमें सफल नहीं हुए. इस आन्दोलन के सिलसिले में गुजरात की विजयनगर रियासत में लोमहर्षक हत्याकाण्ड भी हुआ जिसके सामने जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड भी फीका प्रतीत होगा. राज्य के नीमड़ा गांव में भील बड़ी संख्या में एकत्र थे और विभिन्न रियासती सरकारों के प्रतिनिधियों की श्री तेजावत के साथ समझौता वार्ता चल रही थी. रियासतों की सेना भी वहां मौजूद थी. अचानक रियासती सेनाओं ने निहत्थे भीलों पर गोली वर्षा प्रारम्भ कर दी. इस गोलीकाण्ड में कोई 1200 भील मारे गये श्री तेजावत के पांवों में भी गोली और छर्रे लगे. समझौता वार्ता भंग हो गयी और भील उन्हें अज्ञात स्थान को ले गये.

इसके साथ ही श्री तेजावत का अज्ञातवास का काल शुरू हो गया, जो आठ वर्ष तक जारी रहा. भीलों का एक समूह उनके साथ रहता और उनकी सतर्कता से रक्षा करता. सन् 1922 में जब श्री तेजावत अज्ञातवास में थे, सिरोही रियासत के दीवान श्री रमाकांत मालवीय उनसे मिलने उनके शिविर में पहुंचे थे. उस समय राजस्थान सेवा संघ के अध्यक्ष श्री विजयसिंह पथिक अपने साथियों के साथ समझौता वार्ता में सहायता देने के लिए उपस्थित थे. श्री रमाकांत मालवीय को तलवारों के साये के नीचे से गुजरना पड़ा और किसी प्रकार का दंगा न करने की शपथ लेनी पड़ी थी. समझौता हुआ, किन्तु उसका परिपालन नहीं हुआ. एक अंग्रेजी फौजी अफसर के नेतृत्व मे भीलों पर आक्रमण हुआ और सिरोही रियासत के दो भील गांवों भूला और वालोलिया को जला कर राख कर दिया. भीलों का सारा अनाज जल गया और मवेशी भी घायल हुए. अनेक भील मारे गये और जख्मी हुए. इस हत्याकाण्ड को सिरोही भील हत्याकाण्ड के नाम से जाना जाता है. उसकी देश-विदेश में चर्चा हुई. राजस्थान सेवा संघ ने भील पीड़ितों के लिए सहायता कार्य संगठित किया था.

श्री तेजावत द्वारा संचालित भील आन्दोलन का एक और सामाजिक पहलू था. वह भीलों को शराब और मांस सेवन की बुराई त्यागने का उपदेश देते थे. दूसरे अर्थों में भील आन्दोलन समाज सुधार का भी आन्दोलन था.

देश के अन्यतम नेता महात्मा गांधी को भील आन्दोलन से अवगत किया गया. उन्होंने श्री मणिलाल कोठारी के द्वारा श्री मोतीलाल तेजावत को परामर्श दिया कि वह पुलिस के सामने आत्मसमर्पण कर दे. श्री तेजावत ने इस परामर्श को स्वीकार कर लिया और लगभग सात वर्ष तक अज्ञातवास में रहने के बाद सन् 1929 में उन्होंने अपने को ईडर रियासत के खेड़ब्रह्मा गांव में पुलिस के हवाले कर दिया. ईडर रियासत उन पर कोई मुकदमा नहीं चलाना चाहती थी. दूसरी रियासतों को लिखा गया कि यदि वे चाहें तो श्री तेजावत को उन्हें सौंपा जा सकता है. अकेली उदयपुर रियासत ने उनकी मांग की और उन्हें उसके हवाले कर दिया गया.

इसके साथ ही श्री तेजावत का लम्बा जेल जीवन प्रारंभ होता है. उन्हें 6 अगस्त सन् 1929 से 23 अप्रेल 1936 तक उदयपुर की सैण्ट्रल जेल में बन्दी बना कर रखा गया और करीब सात वर्ष बाद जब जेल से रिहा किया गया, तो उन पर यह प्रतिबंध लगा दिया गया कि वह उदयपुर की म्यूनिसिपल सीमा से बाहर नहीं जाएगे.

सन् 1938 में मेवाड़ प्रजामण्डल का आन्दोलन प्रारंभ हुआ तो श्री तेजावत ने उसमें भाग लिया वह गिरफ्तार हुए, किन्तु कुछ समय बाद रिहा कर दिये.

अगस्त सन् 1942 में मेवाड़ प्रजामण्डल ने "अंग्रेजों भारत छोड़ो" आन्दोलन के सिलसिले मे महाराणा को अंग्रेजी ताज से सम्बन्ध विच्छेद करने का नोटिस दिया. इस

प्रज मण्डल के कार्यकर्ता गिरफ्तार हुए और तीन वर्ष सन् 1945 तक नजरबंद रखे गये. तीन वर्ष जेल में रहने के बाद जब उन्हें रिहा किया गया तो उन पर पुनः उदयपुर की म्यूनिसिपल सीमा में रहने का प्रतिबन्ध लगा दिया गया. यह प्रतिबन्ध भारत के स्वतंत्र होने तक जारी रहा.

श्री तेजावत ने गांधी जी के परामर्श पर आत्मसमर्पण किया था. गांधी जी ने सार्वजनिक रूप से उदयपुर रियासत के अधिकारियों से श्री तेजावत को रिहा करने का अनुरोध किया, ताकि वह भीलों में अपने समाज सुधार का काम जारी रख सकें. किन्तु उदयपुर रियासत की हुकूमत ने गांधी जी के इस सत्यपरामर्श को ठुकरा दिया और उन्हें जेल में बन्द रख कर अपनी प्रतिशोध की भावना को सन्तुष्ट किया.

श्री तेजावत का सारा जीवन ही संघर्षों में बीता. भीलों की सेवा का व्रत उन्होंने लिया जो दरिद्र नारायण की प्रतिमूर्ति थे. भीलों को अत्याचारों और शोषण से मुक्ति दिलाने में उन्होंने सारा जीवन खपा दिया. लम्बा कारावास भुगता. अनेक वर्ष नजरबन्द रहे. उनका जीवन एक उच्च ध्येय के लिए समर्पित था और उस ध्येय की प्राप्ति के लिए उन्होंने कोई कीमत चुकाने में आगा-पीछा नहीं किया. देश के स्वतंत्र होने के बाद भी उन्होंने अपने लिए कुछ नहीं चाहा और अभावों का जीवन जीते हुए 5 दिसम्बर सन् 1963 को इस संसार से प्रयाण कर गये. मैं उनकी स्मृति को शत-शत प्रणाम करता हूं.

श्री मोतीलाल तेजावत का जीवन भील आन्दोलन से गहरा जुड़ा हुआ था. यह स्वाधीनता काल का विराट आन्दोलन था, जिसमें लाख लाख स्त्री पुरुषों ने भाग लिया, अमित कुर्बानियां दीं. श्री तेजावत का जीवन और भील आंदोलन भावी पीढ़ियों के लिए प्रेरणा स्रोत रहेगा.

मुझे खुशी है कि मेरे आत्मीय श्री प्रेमसिंह कांकरिया ने श्री तेजावत के त्यागमय जीवन और भील आन्दोलन के गहरे और व्यापक अध्ययन के बाद यह रचना प्रस्तुत की है और राजस्थान साहित्य अकादमी उसे प्रकाश में ला रही है. मैं इसके लिए उन्हें हृदय से बधाई देता हूं. मेरी आशा है कि श्री कांकरिया की यह रचना स्वाधीनता संग्राम के इतिहास सम्बन्धी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त करेगी और इतिहास की शोध खोज करने वाले विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी. इसका वाचन सर्व-साधारण के लिए भी प्रेरणाप्रद होगा.

डी 31 गुलमोहर पार्क
नई दिल्ली
6 दिसम्बर 1985

—शोभालाल गुप्ता



भील क्रान्ति के प्रणेता मोतीलाल तेजावत

सूची

प्राक्कथन

राजस्थान की जन-जागृति एवं स्वातंत्र्य-संघर्ष के इतिहास में भील नेता श्री मोतीलाल तेजावत का अप्रतिम योगदान रहा. शोषण एवं उत्पीड़न के शिकार राजस्थान के हजारों आदिवासियों की करुण स्थिति से द्रवित होकर उन्होंने मेवाड़ एवं अन्य रियासतों के सामन्ती शासन से उस समय लोहा लिया, जबकि इन रियासतों के दमनकारी आतंक के विरुद्ध खड़े होने का बहुत कम लोग साहस कर पाते थे. उन्होंने आदिवासी समाज की विपन्नता, कुरीतियों, अन्धविश्वास, भक्ष्याभक्ष्य के विरुद्ध अकेले ही संघर्ष का शंख फूंका. वे लाखों आदिवासियों के हृदय में अभिषिक्त उनके बेताज के बादशाह बन गए थे और इस प्रकार अपने जीवन-काल में ही वे इतिहास-पुरुष के आसन पर प्रतिष्ठित हो गये थे. देश की आजादी के संघर्ष में भी वे सदैव आगे की पंक्ति में रहे.

ऐसे कर्मठ नेता के जीवन-चरित्र एवं कर्म-समुच्चय से राजस्थान एवं अन्य प्रदेशों की अधिकांश जनता अपरिचित हैं, यह दुख की बात है. नई पीढ़ी के लिए तो वे सर्वथा अज्ञात हैं. जिस व्यक्ति ने आदिवासी समाज और देश के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन होम दिया था, उसके प्रति हमारा विस्मरण और अज्ञान निस्संदेह खेदजनक है. होना तो यह चाहिए कि देश विशेषतः राजस्थान का बच्चा-बच्चा ऐसे नरपुंगवों की अमर गाथाओं से परिचित हों और उनके चरित्र से देशानुराग एवं त्याग की प्रेरणा ग्रहण करें. यह हमारी अनुदार प्रवृत्ति का द्योतक है कि ऐसे महामानवों की स्मृति को जीवन्त बनाये रखने के लिए हमने स्वाधीनता के 37 वर्ष बाद तक कोई उपक्रम नहीं किया. प्रस्तुत पुस्तक के लेखन के पीछे यही मुख्य उद्देश्य है कि श्री तेजावत जैसे नर श्रेष्ठ के बलिदान

की कहानी को जन-जन के सम्मुख लाया जाय और उसे अतीत के गर्भ में ओझल होने से बचाया जाय.

प्रस्तुत पुस्तक में श्री तेजावत से सम्बन्धित अनेक अनछुए संदर्भों को प्रकाश में लाया गया है. यह प्रयास किया गया है कि श्री तेजावत के व्यक्तित्व को सही परिप्रेक्ष्य में आंका जाय और उन घटनाओं को रेखांकित किया जाय, जिनको गति देने हेतु उन्होंने अथक प्रयास किया था.

स्वाधीनता-संग्राम मे जन-चेतना जागृत करने तथा वांछित वातावरण का निर्माण करने में कवि-वाणी ने महत्वपूर्ण योगदान दिया था. स्वाधीनता संग्राम के कतिपय योद्धा एक ओर विदेशी शक्ति के विरुद्ध संघर्षरत थे तो दूसरी ओर वे अपने कवि-कर्म द्वारा जनता में उत्साह और चेतना का संचार कर रहे थे. ऐसे योद्धा-कवियों के गीतों की बानगी का रसास्वादन कराने का प्रयास भी प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने किया है.

भील जाति के अतीत एवं वर्तमान तथा भील लोक संस्कृति के प्रासंगिक बिन्दुओं पर भी संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है.

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन में माननीय श्री हरिदेव जोशी, मुख्य मन्त्री, राजस्थान की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन के लिये कृतज्ञ हूं, साथ ही पुस्तक के लेखन में जिन सुधी विद्वानों की रचनाओं से मुझे बहुमूल्य मार्गदर्शन एवं सहायता मिली है, उन सभी के प्रति हार्दिक आभार एवं कृतज्ञता व्यक्त करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं. अनेक सन्दर्भों के यथा-स्थान संयोजन में इनसे मुझे वांछित दिशा-दृष्टि मिली है. इन सभी गणमान्य रचनाकारों का उल्लेख पुस्तक के अन्त में लगे परिशिष्ट में किया गया है.

इस पुस्तक के सुन्दर प्रकाशन एवं साज-सज्जा के लिए मैं राजस्थान साहित्य अकादमी के अध्यक्ष डॉ. प्रकाश आतुर के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करना चाहता हूँ. उनके उदार सहयोग से ही पुस्तक का कलेवर इतना आकर्षक बन सका.

पुस्तक में पाई जाने वाली त्रुटियों तथा विसंगतियों की ओर ध्यानाकर्षण का सदैव स्वागत होगा.

उदयपुर
दि. 12 नवंबर '85
दीपोत्सव

—प्रेमसिंह कांकरिया

प्रथम अध्याय

केन्द्रीय सत्ता एवं रियासतें

भील नेता श्री मोतीलाल तेजावत ने देश की स्वाधीनता के पूर्व के इतिहास मे राजस्थान के रियासती जन-जागरण में अभूतपूर्व योगदान दिया था. वे रियासती जनता को दासता के बंधन से मुक्त कराने वाले उन समर्पित व्यक्तियों में थे, जिन्होंने विपन्न आदिवासी-समुदाय के लिए अपना सर्वस्व स्वाहा कर दिया था. सामन्ती उत्पीड़न एवं अन्याय के विरुद्ध इस कर्मठ देशभक्त ने आजीवन संघर्ष किया. श्री तेजावत के हृदय में शोषित, पीड़ित एवं दलित आदिवासी जनता के लिए असीम सहानुभूति एवं संवेदना थी. उन्होंने लाखो आदिवासियों के जीवन में जागृति एवं चेतना का संचार करने के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी और इस क्रम मे उन्होंने अपने स्वप्नों, आकांक्षाओं एवं सुख-सुविधाओं को नितान्त विस्मृत कर दिया. उन्होने आदिवासी जनता के हृदय में अपना अमिट स्थान बना लिया था.

इससे पूर्व कि उनके महत् योगदान का मूल्यांकन किया जाय, यह समीचीन प्रतीत होता है कि राजस्थान की रियासतों की तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक एवं

सामाजिक स्थिति पर संक्षिप्त दृष्टि डाल ली जाय. इससे आदिवासी जन-जीवन की पृष्ठभूमि को वांछित संदर्भों में समझने मे सहायता मिलेगी.

तत्कालीन रियासती परिप्रेक्ष्य

भारतवर्ष मे मुगल साम्राज्य के विशृंखल होने और अंग्रेजों की सत्ता स्थापित होने के पूर्व देशी रियासतों की स्थिति बड़ी डांवाडोल हो गई थी उनका राजनीतिक स्थायित्व निश्शेषप्राय था. दिल्ली में मुगल साम्राज्य अन्तिम श्वासें ले रहा था. मुगल सम्राट अकबर, जहांगीर एवं शाहजहा की उदार एवं सहयोगवादी नीति को तिलांजलि दे दी गई थी. औरंगजेब के शासनकाल में यद्यपि देश धन-धान्य से परिपूर्ण था, किन्तु उसकी साम्प्रदायिक, संकीर्ण एवं अविश्वासजन्य नीति ने स्थान-स्थान पर संघर्ष एवं विद्रोह की स्थिति उत्पन्न कर दी थी. अशान्ति बढ़ती गई. उसके उत्तराधिकारियो की विलासिता और अदूरदर्शिता ने केन्द्रीय सत्ता को अत्यन्त दुर्बल कर दिया था. साम्राज्य की ऐसी डगमगाती पतनोन्मुखी स्थिति में देश में मराठा, जाट, सिख एवं पिण्डारी आदि नई शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ. इनमें भी मराठा शासकों ने विशेष शक्ति का संचय कर लिया था, किन्तु उन्होंने आक्रामक एवं विवेक शून्य नीति अंगीकार कर ली थी, जो आगे चल कर उनके लिए घातक सिद्ध हुई. मराठों ने अपनी शक्ति का उपयोग अन्य शासकों के साथ सहयोग करके विदेशियों की बाढ़ को अवरुद्ध करने के लिए नही किया, किन्तु अपनी संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण पारस्परिक संघर्ष, विद्वेष एवं लूटमार मे ही उन्होंने अपनी शक्ति का अपव्यय किया. अन्य शक्तियां भी इस संकीर्णता से ऊपर नहीं उठीं. राजस्थान की रियासतों के शासक भी छोटे-छोटे कारणों को लेकर आपस में लड़ने और एक दूसरे को नीचा दिखाने में लगे हुए थे. यदि राजस्थान के राजपूत शासक एक होकर अपनी सम्मिलित शक्ति से विदेशियों को खदेड़ देते तो देश को पराधीनता की बेड़ियों में नही बंधना पड़ता और देश का इतिहास ही कुछ और होता. पूरी एक शताब्दी तक राजस्थान के नेतृत्वहीन शासक मराठों और पिंडारियों की लूटमार से त्रस्त होते रहे. सिंधिया, होल्कर और पिंडारी राजस्थान की रियासतों को आये दिन पदाक्रान्त करते रहते थे और इन रियासतों के राजाओं से भारी खिराज वसूल करते थे. साथ ही रियासतों की प्रजा को भी स्वच्छन्द लूटपाट का शिकार होना पड़ता था. जन-धन की अपार क्षति हो रही थी. खिराज की राशि न दे पाने के कारण कई रियासतों को अपने इलाके आक्रमणकारियो को देने के लिए विवश होना पड़ता था.

लूटपाट के इस वातावरण में राजस्थान के नरेश और उनकी प्रजा के सम्बन्ध यद्यपि इतने मधुर तो नही थे, फिर भी वे किसी भी प्रकार कटु भी नहीं कहे जा सकते

थे, क्योंकि आक्रमणकारियों से त्रस्त नरेशों की समय-समय पर प्रजा धन-जन से सहायता करती रहती थी.

ऐसी स्थिति में योरोपीय देशों की कतिपय कम्पनियों ने व्यवसाय और व्यापार की दृष्टि से इस देश में अपने पांव फैलाना प्रारम्भ कर दिया था, साथ ही यहां की फूट और अराष्ट्रीयता से लाभ उठाकर ये कम्पनियां राजनीतिक सत्ता भी प्राप्त करती जा रही थी. इनमें इग्लैण्ड की ईस्ट इंडिया कम्पनी को विशेष सफलता मिली. अंग्रेजो ने कूटनीति द्वारा एक ओर अपने व्यापार-व्यवसाय के द्वारा असीमित लाभ उठाना प्रारम्भ कर दिया था तो दूसरी ओर उन्होने राजनीतिक सत्ता हस्तगत करने के प्रयास भी बढ़ा दिये थे. यह एक बड़े आश्चर्य और विषाद का विषय है कि अंग्रेजों ने सात समुद्र पार से इस देश में आकर यहां की संस्कृति, भाषा एवं रीति-रिवाज से सर्वथा अपरिचित होते हुए भी मात्र देश की आन्तरिक फूट, पारस्परिक बैर, लोभ, संघर्ष और अदूरदर्शिता के कारण शीघ्र ही इस देश में अपना आधिपत्य जमा लिया. देशी रियासतो के नरेश भी उनकी अधीनता की जाल में फंस गये.

अंग्रेजों ने जब इस देश को अपने वर्चस्व में समेटना प्रारम्भ किया, उस समय यहां मुगलो की केन्द्रीय सत्ता लड़खड़ा रही थी. विलासिता के पंक में डूबा हुआ मुगल बादशाह सर्वथा निस्तेज, हतप्रभ नाममात्र का शासक था. राजस्थान और बाहर के नरेश आपस में लड़ रहे थे. पारस्परिक वैमनस्य के कारण मराठों का भी कोई शक्तिशाली संगठन नहीं था. अंग्रेजों ने अपनी कूटनीति से इनमें और सिखो में फूट डाल कर इन्हें दुर्बल कर दिया और अन्त में अपने अधीन कर लिया.

अंग्रेजों ने अपनी सूझबूझ, और भेदनीति के कारण क्रमशः पूरे देश को पदाक्रान्त कर के अपनी विजय पताका फहराने का गौरव प्राप्त कर लिया.

रियासतों का संधि-प्रकरण

भारतवर्ष में अंग्रेजी राज्य की स्थापना का कार्य सन् 1757 से प्रारंभ हुआ माना जा सकता है. यहां के नरेश, जो अपनी-अपनी रियासतों के शासक थे, और जिनसे अंग्रेजों ने विविध सुविधायें प्राप्त करने की याचना की थी, क्रमशः अपनी सार्वभौम सत्ता गंवा कर मात्र पंगु शासक रह गये. ईस्ट इंडिया कम्पनी ने प्रारम्भ में नरेशों के साथ संधियां समानता और मैत्री के आधार पर की थीं, किन्तु बाद में इन संधियों का स्वरूप अधीनता सूचक एवं दासताजन्य हो गया. समानता के आधार पर की गई

प्रारंभिक संधियों की संख्या केवल बारह थी. इसके पश्चात् 1818 में जो संधियां हुई, वे निश्चित रूप से दासता सूचक थीं. कुल 40 संधियां ही हुई, शेष रियासतों को तो सनदें या इकरारनामें ही दिये गये. धीरे-धीरे सर्वोच्च सत्ता अंग्रेजों ने हस्तगत कर ली. अंग्रेजों ने संधियों का क्रियान्वयन और नियमन इस प्रकार किया कि उनके अधिकांश प्रावधान व्यर्थ हो गये और देशी रियासतों पर जिनमें राजस्थान की रियासतें भी सम्मिलित हैं —उनका राजनीतिक शिकंजा कसता गया. ब्रिटिश सरकार संधियों के प्रावधानों से बंधी नहीं रही. राजाओं के साथ उनका व्यवहार रीति-रिवाजों के आधार पर क्रमशः परिवर्तित होता गया. किसी भी नरेश में अंग्रेजी शासन का सक्रिय विरोध करने की शक्ति न रही. ब्रिटिश शासन के निर्णय अंतिम और अटल होते थे, जिन्हें मानने के लिए नरेश बाध्य थे. जो नरेश स्वयं को इंग्लैण्ड के सम्राट का मित्र समझते थे वे अब सम्राट द्वारा नियुक्त अधिकारियों के अधीन हो गये.

आर्थिक एवं सामाजिक जन-जीवन

इस समय राजस्थान की रियासतों की आर्थिक स्थिति बड़ी विषम थी. जनता के सभी वर्ग लूटपाट, शोषण के शिकार होकर दीन-हीन हो गये थे. सभी रियासतों में नरेशों के इर्द-गिर्द और प्रशासन की बागडोर अपने अधिकार में रखने वाले व्यक्ति अवश्य ही समृद्ध थे. शेष जनता-मुख्यतः ग्रामीण जनता तो नितान्त दीन-हीन जीवन व्यतीत कर रही थी. यह आश्चर्य की बात है कि इतनी बेबसी की स्थिति में जीने वाली जनता नरेशों के प्रति किस प्रकार पूर्णतः समर्पित रही और भक्ति एवं निष्ठा का परिचय देती रही. अंग्रेजों की सत्ता स्थापित होने के बाद जनता की स्थिति में तीव्र परिवर्तन आया. जो नरेश पहले प्रजा के सुख-दुःख का यत्किंचित ध्यान रखते थे, वे अंग्रेजी संरक्षण पाकर जनता पर अन्याय एवं आतंक ढाने लगे.

रियासती प्रजा अन्याय, अत्याचार और आतंक से कितनी प्रताड़ित हो उठी थी, इसका विवरण अगले पृष्ठों में दिया जा रहा है.

जनता का सामाजिक जीवन रूढ़ियों, अंध-विश्वासों एवं शोषण के फलस्वरूप पूर्णतः विशृंखल हो रहा था. उनको सही दिशा-बोध देने वाले तत्व नगण्य थे. आदिवासी जनता तो सर्वथा उपेक्षित नारकीय जीवन जी रही थी. निहित तत्व उसको हर प्रकार से आतंकित कर अपना स्वार्थ साध रहे थे.

राजस्थान की 80 प्रतिशत जनता गांवों में बसती है और मूलतः कृषि पर आधारित है. ग्रामीण जनता का बहुत बड़ा भाग जनजातियों का है, जो दरिद्रता के निम्नतम स्तर पर जीवन की विकट परिस्थितियों से जूझ रही थी.

अंग्रेज साम्राज्यवादी होने के नाते अपने साम्राज्य के हितों को सर्वोपरि महत्व देते थे. रियासती जनता का हित उनके लिए गौण था. यह अलग बात है कि अपने स्वार्थों को चोट न पहुंचाते हुए उन्होंने यदा-कदा रियासती जनता का हित-चिन्तन भी किया. किन्तु ऐसा करना उनका मुख्य लक्ष्य नहीं रहा.

उत्पीड़न और शोषण का ताण्डव

जब तक देश में अंग्रेजी साम्राज्य की जड़ें दृढ़ नहीं हुई, तब तक राजा अपनी प्रजा के सुख-दुख की उपेक्षा नहीं कर सकते थे. अपनी सुरक्षा की दृष्टि से भी जनता को प्रसन्न रखने में उनका हित था. साधन सम्पन्नता की दृष्टि से नरेश प्रायः असमर्थ थे किन्तु अपनी जनता के सक्रिय सहयोग के कारण वे अपनी प्रतिष्ठा बचाने में बहुधा सफल रहते थे. इसी कारण वे अपनी जनता के अभाव-अभियोगों पर ध्यान देते थे तथा अपने सुशासन से उसे सन्तुष्ट रखते थे. नरेश समय-समय पर आपस में लड़ते तो रहते ही थे, किन्तु कभी-कभी उन्हें बाह्य आक्रमणों का भी सामना करना पड़ता था अतः धन-जन के लिए उन्हें अपनी जनता पर निर्भर रहना पड़ता था.

किन्तु जब अंग्रेजों का रियासतों सहित पूरे देश पर आधिपत्य दृढ़ हो गया, और राजाओं ने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली तो राजाओं को इससे दोहरा लाभ हुआ. प्रथम तो राजाओं के पारस्परिक संघर्ष समाप्त हो गये और दूसरे उन्हें बाह्य आक्रमणकारियों का भी अब कोई भय नहीं रहा. वे निर्द्वन्द्व होकर विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे. पर इसका परिणाम जनता के लिए बड़ा दुखदायी सिद्ध हुआ. अब राजाओं को प्रजा की सहानुभूति और सहयोग की अपेक्षा नहीं रही. वे उसकी उपेक्षा करने लगे. उनकी एकमात्र यही चिन्ता रहती थी कि अंग्रेजों का वरद हस्त उनके मस्तक पर बना रहे. उन्होंने समझ लिया कि अंग्रेजों के प्रसन्न रहते प्रजा उनका कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकती थी.

उत्पीड़न का सूत्रपात

रियासती जनता पर नृशंस अत्याचारों की क्रूर कहानी का सूत्रपात यहीं से होता है. अब वह एक प्रकार से तिहरी गुलामी के शिकंजे में छटपटाने लगी. सबसे ऊपर अंग्रेज थे, जिन्हें प्रसन्न करने के लिए रियासतों के स्वामी विभिन्न प्रकार से अपनी प्रजा को सताने लगे. नरेश अपनी स्वच्छन्दता, उच्छृंखलता और विलासिता के कारण न्यायसंगत प्रणाली नहीं अपना सकते थे. वे तथा उनका प्रशासनिक ढांचा अमानवीय कर, लागतें, वेगार आदि के द्वारा जनता को संत्रस्त और संतप्त करते रहते थे. सबसे

नीचे के स्तर पर जागीरदार थे, जो अपने से ऊपर के दोनों प्रभुओं को प्रसन्न करने और स्वयं अपने स्वार्थों के लिए गरीब प्रजा पर नृशंसतापूर्वक अन्याय और अत्याचार करते थे. इस प्रकार रियासती जनता विशेषतः गांवों की गरीब जनता-त्रिस्तरीय दासता और अत्याचारों से पीड़ित हो रही थी. किसी भी स्तर पर उसकी सुनवाई होना और न्याय मिल पाना कठिन था. ब्रिटिश भारत में भी शासन-व्यवस्था सर्वथा न्यायसंगत नहीं कही जा सकती थी. यहां भी नौकरशाही ने समय-समय पर ऐसे अत्याचार किये थे, जो सभ्य शासन के लिए कलंक थे, किन्तु रियासतों में होने वाले अत्याचारों से उनकी कोई समानता नहीं थी. इन अत्याचारों की कहानी बहुधा प्रकाश में नहीं आती थी, क्योंकि उस समय संचार साधन एवं आवागमन की सुविधाओं का नितान्त अभाव था. अनेक व्यक्ति वर्षों तक अत्याचारों के शिकार होकर घोर कष्टमय जीवन व्यतीत करते हुए अन्त में मर जाते थे, किन्तु बाहर वालों को इसका कुछ भी पता नहीं लगता था. रियासतों में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नगण्य थी. रियासती जनजीवन अशिक्षा, अज्ञान, कुरीतियों आदि के संकीर्ण दायरे में झूल रहा था. कभी-कभी कहीं-कहीं कतिपय साहसी कार्यकर्ता अनेक संकटों का सामना करते हुए इस विभीषिका को प्रकाश में लाने का यत्न करते थे, किन्तु समुचित संगठन के अभाव में उनको सफलता नहीं मिल पाती थी.

सन् 1857 के स्वातंत्र्य-संग्राम ने अंग्रेजों के सामने भारी संकट उपस्थित कर दिया था. किन्तु अंग्रेजों के प्रति नरेशों की निष्ठा और वफादारी के कारण उस समय देश को स्वाधीन होने का गौरव प्राप्त नहीं हो सका. देशी रियासतों को समाप्त करने की अंग्रेजों की नीति में अब स्पष्ट परिवर्तन आ गया था. उन्हें रियासतों को ब्रिटिश भारत में सम्मिलित करना अब इतना लाभप्रद प्रतीत नहीं हुआ जितना उन्हे बनाये रखना उनके लिए हितकर सिद्ध हुआ. रियासती जनता के जन-धन का शोषण अंग्रेजों की सहमति और संकेत पर होता था, किन्तु वे इस दायित्व से बचे रहते थे, क्योंकि इस कार्य के लिए वे राजा या रियासती प्रशासन को अस्त्र बनाते थे नरेशों और जागीरदारों द्वारा उनके वैभवपूर्ण और विलासितापूर्ण जीवन के साधन जुटाने हेतु किये गये अत्याचारों की शिकायत भी अंग्रेज नहीं सुनते थे. ब्रिटिश सरकार ने रियासतों के साथ अहस्तक्षेप की नीति अपना ली, क्योंकि यही उनके लिए हितकर थी, इससे नरेशों को अपनी रियासतों में स्वच्छंद कार्यकलापों के लिए छूट मिल गई जब तक उनकी सत्ता और ऐश्वर्य के साधन सुरक्षित रहे. जब कभी जनता ने दुस्साहस कर नरेशों के विरुद्ध सिर उठाया, तो ब्रिटिश सेना और शक्ति उनकी सहायता के लिए तत्पर रहती थी.

फलस्वरूप अधिकांश नरेश स्वेच्छाचारी बन गये. उन्होंने यह नीति अपना ली कि अपने विलासितापूर्ण जीवन के लिए जनता के साधनों का अधिकाधिक अपहरण किया जाय और अंग्रेज प्रभुओं को प्रसन्न रखा जाय. यह विषादजन्य स्थिति उनकी पूर्व प्रणाली के सर्वथा विपरीत थी. नरेशों की इस प्रकार की स्वेच्छाचारिता की संसिद्धि के लिए अनैतिक, चापलूस एवं हृदयहीन प्रशासकों एवं कर्मचारियों की आवश्यकता थी. दुर्भाग्य से इनका कोई अभाव नहीं रहा. नीति-परायण एवं जनहित का चिन्तन करने वाले कर्मचारी प्रशासन में टिक ही नहीं पाते थे. रियासती जनता केवल नरेशों के अत्याचारों की ही शिकार होती थी, ऐसी बात नहीं है. उनका समस्त प्रशासनिक ढांचा इस प्रकार के दुर्व्यवहार में लिप्त रहता था. अधिकांशतः नरेशों की ओट में उनके कर्मचारी ही इस अनैतिमूलक लूट के जनक होते थे, किन्तु इससे कलंकित तो नरेश ही होते थे. ऐसे भी नरेश थे, जो जनता के दुःख-दर्द के प्रति सहानुभूति रखते थे और उसे संतुष्ट करने का प्रयत्न करते थे, किन्तु भ्रष्ट कर्मचारी ऐसे प्रयत्नों में बाधक बन जाते थे, क्योंकि इससे उनके स्वार्थों को हानि पहुंचती थी. रिश्वत और घूंसखोरी बढ़ रही थी. वास्तव में अब राजाओं का अस्तित्व प्रजा के सुख-समृद्धि के लिए नहीं था, प्रत्युत प्रजा ही राजाओं के वैभव, विलास के लिए जी रही थी.

ग्राम्य जीवन की दुर्दशा

देश में अंग्रेजों की सत्ता में जब स्थिरता आ गई, और सम्पूर्ण विरोध कुचल दिया गया तो उसके दूरगामी प्रभाव हुए. रियासती क्षेत्र के जो गांव प्रायः अब तक स्वावलम्बी थे, वे परावलम्बी हो गये. छोटी से छोटी वस्तु के लिए वे दूसरों का मुंह ताकने लगे. आजीविका के मुख्य साधन श्रम, व्यापार-व्यवसाय और कृषि को भारी आघात पहुंचा. मोटा कपड़ा, गुड़, चीनी, तेल-तिलहन, मिर्च-मसाले, नमक आदि के उत्पादन द्वारा अभी तक ग्रामवासी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेते थे किन्तु अब विदेशी कपड़ा तथा अन्य वस्तुओं की मांग बढ़ती गई और गांव का आर्थिक स्वावलम्बन लड़खड़ा गया. लोगों के आजीविका के साधनों में कमी हो गई. विदेशी वस्तुओं का क्रय बढ़ने से अधिकाधिक धन बाहर जाने लगा. आदिवासी क्षेत्रों में स्त्री-पुरुषों को अपना तन ढकने योग्य कपड़ा भी उपलब्ध नहीं होता था, न सर्दी में उनके बच्चों को ओढ़ने बिछाने के साधन मिल पाते थे. बहुधा उनको घास फूस के भीतर छिपकर या अग्नि के सहारे रात्रियां व्यतीत करनी पड़ती थीं. सर्वत्र कुपोषण का साम्राज्य था. अन्न-वस्त्र की अपर्याप्तता से दुर्बलता और रोगों का आधिक्य हो गया था. जब तब महामारियों का प्रकोप होता रहता था. चिकित्सा एवं औषधियों का अभाव था. फिर गांव-गांव में मदिरा के ठेकों की दुकानें खुल गई. पहले से जर्जरित आर्थिक स्थिति को मदिरा के

व्यसन ने पूरी तरह चौपट कर दिया. छोटे गांवों और आदिवासी दूरस्थ क्षेत्रों में शिक्षा की व्यवस्था नही के बराबर थी. रियासती प्रशासन का यह तर्क होता था कि शिक्षित होकर गांवों के पिछड़े लोग अपने अधिकारों के लिए आंदोलन करेंगे, अतः उनमें ज्ञान का प्रकाश न पहुंचने देना ही श्रेष्ठ है. फिर अंग्रेजों ने शिक्षा पद्धति भी जानबूझ कर इस देश में ऐसी आरोपित की, जो लोगों की सादगी और संयम की भावना को समाप्त कर उन्हें विलासी बना देती थी और उनको मात्र नौकरी के लिए तैयार कर परमुखापेक्षी बना देती थी. इसके अतिरिक्त राज्य-कर्मचारी, महाजन-साहूकार एवं जमींदार गांव के किसानों जिनमें आदिवासी किसान भी थे, का अधिकाधिक शोषण करने लगे. नागरिक अधिकारों का सर्वथा अभाव था. जागीरदारी-प्रथा की क्रूरता अपनी अलग ही कहानी कहती है. जागीरदार किसानों से लगान के अतिरिक्त विविध लाग-बागें वसूल करते थे. उनके अत्याचारों का कोई अन्त नहीं था. नाई, धोबी, कुम्हार, चमार, भील आदि सभी जातियों को अनिवार्यतः जागीरदारों को बेगार देनी होती थी. जागीरदारों के विरुद्ध राजा-महाराजाओं के दरबार में इनकी सुनवाई होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं था.

इस प्रकार अंग्रेजों के शासन-काल में अनेक कारणों से जनता का असंतोष बढ़ता ही गया. इस असंतोष को कम करने की अपेक्षा रियासती प्रशासन बहुधा उसका दमन करने के लिए ही व्यग्र रहता था और आतंक के द्वारा उसे शान्त रखने में ही अपनी गरिमा समझता था.

इस प्रकार दीन-हीन रियासती जनता पर उत्पीड़न और दमन का चक्र इस शताब्दी के चौथे दशक के मध्य तक चलता रहा. जनता की आर्त पुकार को सुनकर कुछ इने-गिने कर्मठ व्यक्ति आगे आये और उन्होंने रियासतों के शासकों का ध्यान इस ओर खींचा, किन्तु परिणाम विशेष फलदायी सिद्ध नही हुआ. रियासती जन नेताओं में कदाचित् भील नेता श्री मोती लाल तेजावत ही ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने मेवाड़ और कई पड़ौसी रियासतों की लाखों आदिवासी जनता की करुण पुकार सुनी. उन पर अमानुषिक अत्याचार करने वाले तत्वों को उन्होंने चुनौती दी. उन्हे इसके लिए कठिन संघर्ष करना पड़ा. उस समय राजस्थान की सर्वाधिक दीन-हीन, उत्पीड़ित आदिवासी जनजाति की व्यथा को वाणी देने वाला अकेला मोती लाल तेजावत ही था.

द्वितीय अध्याय

क्रान्ति की चिनगारियां

अत्यधिक दमन की प्रतिक्रिया असन्तोष में प्रकट होती है, और यह असन्तोष घनीभूत होकर विस्फोट का रूप ले लेता है. यद्यपि संगठित आंदोलन का स्वरूप 19वीं शताब्दी के अन्त तक रूपायित नहीं हुआ, किन्तु विद्रोह की चिनगारियां राजस्थान के विशाल भूभाग में यत्र-तत्र परिलक्षित होने लगी थी. पृष्ठभूमि की दृष्टि से इन पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालना आवश्यक है.

19वीं शताब्दी के अन्त और 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में रियासती क्षितिज पर कतिपय ऐसे क्रान्तिकारी नक्षत्र उदित हुए, जिन्होंने अपने अवतरण से एक नये वातावरण का निर्माण किया. जागृति के इन अग्रदूतों में सर्वश्री विजयसिंह पथिक, अर्जुन लाल सेठी, केशरी सिंह बारहठ, राव गोपाल सिंह खरवा, सेठ दामोदर दास राठी, जोरावर सिंह बारहठ, प्रताप सिंह बारहठ, रामनारायण चौधरी, छोटे लाल, बाबू ब्रजमोहन लाल माथुर एवं श्री मोती लाल तेजावत आदि-आदि उल्लेखनीय हैं. राजस्थान के क्रान्तिकारी नेताओं में अर्जुन लाल सेठी का शीर्षस्थ स्थान है. वे जयपुर

के महाराजा कालेज के स्नातक थे. वे हिन्दी, संस्कृत, उर्दू और फारसी के विद्वान थे. अंग्रेजी शासन के प्रति उनके मन में तीव्र आक्रोश था, साथ ही स्वाधीनता के लिए भी उनके मानस में तड़पन थी. उन्होंने पूरे देश से नवयुवकों का चयन कर एक संगठन बनाया था और उनमें देश भक्ति की भावना प्रस्फुटित करने के लिए "जैन वर्द्धमान पाठशाला" स्थापित की. सन् 1914 में प्रथम महायुद्ध के प्रारंभ होने से पूर्व उन्होंने क्रान्तिकारी दल की राजपूताना की शाखा संगठित कर ली थी. इस संगठन के सदस्यों में केशरी सिंह बारहठ, राव गोपाल सिंह, विजय सिंह पथिक एवं सेठ दामोदर दास राठी थे. महायुद्ध प्रारम्भ होने पर इनको जयपुर जेल में नजरबन्द कर दिया गया. बाद में इनको मद्रास प्रान्त के वेलोर जेल में भेज दिया गया. इनके अनुयायी नवयुवकों में से कुछ तो पकड़ लिए गए और कुछ भाग गये. प्रथम महायुद्ध के बाद सेठी जी कारावास से रिहा कर दिये गये.

श्री केशरी सिंह बारहठ का कार्य क्षेत्र राजस्थान के नरेशों और जागीरदारों में था. उन्होंने सन् 1903 के दिल्ली दरबार में सम्मिलित होने से रोकने के लिए महाराणा फतह सिंह जी को कुछ प्रसिद्ध सोरठे लिखकर भेजे थे, जिनका वांछित प्रभाव हुआ. महाराणा दिल्ली से वापिस लौट आये और दरबार में सम्मिलित नहीं हुए. बारहठजी अंग्रेजी राज्य के घोर विरोधी थे. इनका सारा परिवार स्वतंत्रता की बलिवेदी पर अर्पित हो गया था. श्री बारहठजी को आरा और जोधपुर के महन्तों की हत्या के अभियोग में लंबी सजा दी गई. उनकी जागीर और मकान शाहपुरा नरेश द्वारा जब्त कर लिये गये. बारहठजी के छोटे भाई जोरावर सिंह लापता हो गये. बारहठजी को महायुद्ध की समाप्ति पर जेल से छोड़ा गया. क्रान्तिकारी आन्दोलन के दूसरे मुख्य कार्यकर्ता खरवा (अजमेर) के राव गोपाल सिंह थे. श्री विजय सिंह पथिक इनके मंत्री थे. अजमेर-मेरवाड़ा और मेवाड़ इनकी प्रवृत्तियों के केन्द्र थे. मुख्यतः शस्त्र एकत्रित करने का दायित्व इनके ऊपर था. इन्हें भी अजमेर जेल में नजरबन्द कर दिया गया था.

सेठ दामोदर दास राठी का मुख्य कार्य क्रान्तिकारी आन्दोलन में आर्थिक दृष्टि से सहायता करना था. सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री अमृत लाल चक्रवर्ती एवं श्री गिरिजाकुमार घोष कुछ समय राठी जी की ब्यावर स्थित कृष्णा मिल में रहे थे.

श्री केशर सिंह बारहठ के पुत्र श्री प्रताप सिंह पर बनारस षड्यन्त्र के मामले में वारन्ट निकला हुआ था. ये भागकर हैदराबाद (सिंध) में गुप्त रूप से रहते थे. श्री रामनारायण चौधरी के साथ हैदराबाद से बीकानेर आते हुए प्रतापसिंह को आशानाडा स्टेशन पर पकड़ लिया गया था. बाद में लार्ड हार्डिंग पर बम फेंकने के सन्देह में इनको जेल में ही फांसी दे दी गई.

श्री रामनारायण चौधरी का यद्यपि पहले राजस्थान के क्रान्तिकारी दल से सक्रिय सहयोग रहा, किन्तु बाद में सेठ जमना लाल बजाज और महात्मा गांधी के सम्पर्क में आने पर वे वर्धा चले गये और इनका क्रान्तिकारी आन्दोलन से सम्बन्ध न रहा.

श्री विजयसिंह पथिक प्रारंभ में क्रान्ति के सूत्रधार रहे किन्तु बाद में जन-जागरण और लोक सेवा के महत्वपूर्ण क्षेत्र में कार्यशील रहे. ये बिजौलिया के प्रसिद्ध किसान सत्याग्रह के प्रवर्तक थे. यह मेवाड़ के सामन्ती अत्याचारों के विरुद्ध रियासतों में होने वाला सर्वप्रथम अहिंसात्मक आन्दोलन था. जो निरन्तर चार वर्ष तक चलता रहा. अधिकारियों ने भारी दमन-चक्र चलाया. सत्याग्रह में महिलाओं ने भी काफी भाग लिया. सन् 1922 में ए. जी. जी. के बीच बचाव से बिजौलिया के जागीरदारों को किसानों से समझौता करना पड़ा. बेगार और बैंजा लागतें समाप्त की गई. किसानो की पंचायतों को मान्य किया गया. पंचायतों को किसानों के मामले तय करने का अधिकार दिया गया. भूमि का स्थायी प्रबन्ध कर राजस्व निश्चित करना मान लिया गया. आन्दोलन के समय रचनात्मक कार्य करने से किसानों में सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबन की भावना उत्पन्न हुई. 1927 में भूमि का बन्दोबस्त तो हुआ, किन्तु किसानों के साथ न्याय नहीं किया गया. किसानों को पुनः सत्याग्रह का आश्रय लेना पड़ा. श्री हरिभाऊ उपाध्याय के प्रयत्न से 1929 में समझौता हुआ, किन्तु राज्य द्वारा उनकी भूमि नहीं लौटाने के कारण सन् 1931 में किसानों को एक बार फिर सत्याग्रह की शरण लेनी पड़ी. अन्त में श्री जमना लाल जी बजाज की मध्यस्थता से समझौता हुआ.

इस प्रकार बिजौलिया सत्याग्रह सामन्तशाही के विरुद्ध जन-जागरण के इतिहास में अपना मुख्य स्थान रखता है. यहां का किसान सत्याग्रह शायद इस युग का प्रथम अहिंसक संघर्ष है. "चम्पारण का सत्याग्रह" इसके ठीक बाद की घटना है.

गोविन्द गुरु

राजस्थान में क्रान्तिकारी आंदोलन धीरे-धीरे समाप्त हो गया. कुछ फुटकर घटनाएं ही यत्र-तत्र होती रही. सन् 1919 के पश्चात् महात्मा गांधी के भारतीय राजनीति में प्रवेश करने पर जन-आन्दोलन ने अहिंसात्मक स्वरूप ग्रहण कर लिया.

राजस्थान एवं गुजरात के आदिवासी अंचलों में गोविन्द गुरु द्वारा चलाए गए आंदोलन का महत्वपूर्ण स्थान है. शोषित, उत्पीडित एवं पिछड़ी भील-मीणा जाति में सुधारवादी क्रान्ति करना ही उनका मुख्य उद्देश्य था. उनका सम्पूर्ण जीवन इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए समर्पित था.

प्रारंभिक जीवन

गोविन्द गुरु का जन्म डूंगरपुर राज्य के बाँसिया ग्राम में संवत 1915 मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा तदनुसार 20 दिसम्बर 1858 को बनजारा परिवार में हु था. उनकी शिक्षा साधारण स्तर की ही हो पाई थी, किन्तु उनकी प्रतिभा और बौद्धि विकास असाधारण था. वे संस्कारशील व्यक्ति थे. भगवद् भक्ति में उनकी अटूट निष्ठ थी. वे मद्य, मांस और अन्य मादक द्रव्यों से दूर रहते थे. वे गले में रुद्राक्ष की मा धारण करते थे, इसलिये उन्हें भगत जी और गोविन्द गुरु के नाम से सम्बोधित कि जाता था.

स्वामी दयानन्द का प्रभाव

गोविन्द गुरु सन् 1880–81 में उदयपुर में स्वामी दयानन्द के सम्पर्क में आ वे उनके शिष्य बन गए तथा उनकी प्रेरणा से स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करने लग स्वामी दयानन्द की प्रेरणा से ही उन्होंने 'सम्प सभा' नामक एक संगठन बनाय जिसका मुख्य उद्देश्य भील एवं मीणा जाति में एकता, प्रेम और भाईचारे की भाव का प्रसार करना था. इस सभा के उद्देश्य इस प्रकार थे:—

(1) मद्य सेवन एवं मांसाहार का त्याग करना.
(2) चोरी, डाका तथा लूटपाट जैसे अपराधों से दूर रहना.
(3) कृषि एवं मेहनत मजदूरी से स्वयं का और परिवार का भरण पोषण करना.
(4) स्नान, ध्यान, भगवद् भक्ति, हवन आदि के द्वारा पवित्र जीवन व्यतीत करना.
(5) प्रत्येक गांव में विद्यालय स्थापित करके बालकों और प्रौढ़ों को साक्षर कर तथा उनमें ज्ञान का संचार करना.
(6) विद्वानों से कथा–वार्ता करवाकर बालकों को संस्कारशील बनाना.
(7) गांव के मामलों का निपटारा पंचायतों के द्वारा कराना तथा पंचायत के फैसल को अंतिम समझना.
(8) अन्याय, अत्याचार एवं दमन का सामना साहस के साथ करना तथा बैठ-बेगा नहीं देना.
(9) विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार तथा स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करना.

उपर्युक्त उद्देश्यों से यह स्पष्ट है कि सम्प सभा मुख्यत: आध्यात्मिक, सामाजि और आर्थिक क्षेत्र में सक्रिय थी. राजनीतिक क्षेत्र से उसका कोई लेन देन नहीं था.

सम्प सभा के सदस्यों को भक्त कहा जाता था. भक्तों को गले में एक रुद्रा

धारण करना होता था. सम्प सभा का प्रभाव धीरे धीरे डूंगरपुर, बांसवाडा, दक्षिणी मेवाड़, सिरोही, ईडर और गुजरात–मालवा के पूरे पर्वतीय क्षेत्र में फैल गया. भीलों ने गावरे में सम्प सभाएं गठित कर ली. वे मद्य, मांस तथा चोरी, डकैती से विरत रहने की शपथ लेने लगें. उन्होंने सरकारी अधिकारियो तथा जागीरदारों को बैठ-वेगार देना भी बन्द कर दिया था. भीलो पर गोविन्द गुरु का असाधारण प्रभाव था. वे प्राण देकर भी उनकी आज्ञा-पालन करने को तत्पर रहते थे. संकटो मे मुक्ति के लिए गोविन्द गुरु ने घर घर में धूणी लगाने (हवन करने) पर जोर दिया.

मानगढ़ की पहाड़ी पर आसन

गोविन्द गुरु ने सन् 1903 की मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा के दिन मानगढ की पहाड़ी पर अपना आसन एवं धूणी (हवन कुण्ड) स्थापित की. इस अवसर पर सपूर्ण क्षेत्र के हजारों भील वहां एकत्रित हुए. इसके पश्चात प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष की पूर्णिमा को मानगढ की पहाड़ी पर मेले लगने लगे. मेले के अवसर पर प्रत्येक स्थान के सरपंच अपने क्षेत्र की प्रगति का विवरण गोविन्द गुरु को सुनाते. मेले में गोविन्द गुरु उपदेश भी देते थे, जो मुख्यतः शुद्ध आचार-विचार से सम्बन्धित होता था.

दमन एव उत्पीड़न का चक्र

यद्यपि सम्पसभा का कार्य आध्यात्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र तक सीमित था, किन्तु रियासतों के शासको को उसमें राजनीति की गंध आने लगी. उन्होने आदिवासियों के सगठन को कुचलने के अनेक प्रयत्न किए. वे उनका दमन और शोषण करने लगे, किन्तु सम्पसभा का संगठन सुदृढ़ था. वे उनकी शक्ति को तोड़ने में सफल नही हुए.

ए. जी. जी. द्वारा हस्तक्षेप

सन् 1903 से 1907 तक सम्पसभा के वार्षिक मेले मानगढ की पहाड़ी पर होते रहे इस बीच गुजरात के गठरा गाव के थानेदार को गुरु गोविन्द के प्रमुख शिष्य पूंजाधीरा ने मार डाला. डूंगरपुर, बांसवाडा और कुशलपुर के नरेशों ने ए. जी. जी. से हस्तक्षेप करने की प्रार्थना की. उन्होने भीलो पर संगठित होकर भील राज्य स्थापित करने का आरोप लगाया. इसी प्रकार गुजरात के राजाओं ने भी अंग्रेजों से हस्तक्षेप करने का आग्रह किया. उन्होंने गोविन्द गुरु को गिरफ्तार करने तथा सम्प-सभा के संगठन को समाप्त करने की भी प्रार्थना की.

मानगढ़ की पहाड़ी पर हिंसा का तांडव

राजाओं की प्रार्थना के अनुसार ए. जी. जी. ने खेरवाडा स्थित छावनी के अधिकारियों को आदेश दिया कि गोविन्द गुरु को गिरफ्तार कर लिया जाय तथा संवत् 1965 की मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा के मेले में एकत्रित होने वाले भीलों को तितर बितर कर दिया जाय. इसके अतिरिक्त बड़ोदा, गोधरा और अहमदाबाद से भी मशीनगन और सेना बुला ली गई. मेले के दिन जब सहस्रों भील मानगढ़ की पहाड़ी पर हो रहे हवन में नारियल और घी होम रहे थे तो सेना ने चारों ओर से पहाड़ी को घेर कर अंधाधुन्ध गोलियां बरसाना प्रारम्भ कर दिया. अनुमान है कि इस भयंकर गोलीबारी में प्राय: 1500 व्यक्ति मारे गए. गोविन्द गुरु और उनकी पत्नी को गिरफ्तार कर अहमदाबाद जेल में भेज दिया गया. गोविन्द गुरु पर सुथरामपुर राज्य के गठरा गांव के थानेदार को मार डालने का अभियोग चलाया गया. उनके शिष्य पूंजाधीरा के द्वारा की गई हत्या के लिए स्वयं गोविन्द गुरु को बहुत दुःख था. उन्हें फांसी की सजा सुनाई गई, जो बाद में आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दी गई. किन्तु अपील करने पर सजा 10 वर्ष की ही रह गई. बाद में जब कैदियों को छूट दी गई तो उन्हें भी जेल से मुक्त कर दिया गया. उन पर गुजरात की सुथरामपुरा और राजस्थान की डूंगरपुर, बांसवाड़ा एवं कुशलगढ़ रियासतों में प्रवेश करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया.

गोविन्द गुरु ब्रिटिश इलाके में दाहोद के निकट झालोद कस्बे में रहने लगे, किंतु फिर वे यह स्थान छोड़कर लीम्बड़ी के पास कम्बोई ग्राम चले गये. इसी गांव में उनकी मृत्यु हुई. उनकी समाधि पर प्रतिवर्ष मेला लगता है. इसी प्रकार मानगढ़ की पहाड़ी पर भी मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा के दिन प्रतिवर्ष एक विशाल मेला लगता है, जहां रात भर हवन तथा भजन कीर्तन का क्रम चलता है

तृतीय अध्याय

भील आन्दोलन के उभरते आयाम

सन् 1912 में श्री मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में हुआ भील आन्दोलन अपनी व्यापकता, रचनात्मकता और अहिंसक क्रान्ति की दृष्टि से बेमिसाल था. श्री मोतीलाल तेजावत के व्यक्तित्व और भील आदोलन का समग्र दृष्टि से मूल्यांकन और परीक्षण दुर्भाग्य से अभी तक नहीं हो पाया है. छुटपुट और अपर्याप्त रूप से ही यदा-कदा इस पर प्रकाश डाला गया. श्री तेजावत के साहसिक अभियान से मेवाड़ और अन्य रियासतों के आदिवासी क्षेत्रों में जो भूचाल आया, उसने सामन्ती, जागीरदारी और उनके अंग्रेज प्रभुओं को हिला दिया था. यद्यपि इसे क्रांति की लम्बी शृंखला की कड़ी के रूप में देखा जा सकता है, किन्तु इस आंदोलन की कुछ ऐसी विशेषताएं थी, जो इसे विशिष्ट गरिमा प्रदान करती है.

रियासती जनता में .20वी शताब्दी के आरम्भ में– मुख्यतः प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर जन-जागरण मुखरित होने लगा था और वह विविध रूपों और आयामों में प्रकट हो रहा था. संसार के विविध देशों की जनता में पारस्परिक सम्पर्क बढ़ने

लगा था. एक देश की जागृति और आंदोलनों का प्रभाव दूसरे देशों पर पड़ना अनिवार्य था. सम्पूर्ण एशिया महाद्वीप में जागृति की प्रबल लहर का सूत्रपात हो गया था. जापान आधुनिक राष्ट्र के रूप मे उभर रहा था. उसने अपनी शासन-प्रणाली में भी जनतन्त्रात्मक सुधार कर लिए थे. चीन में भी परिवर्तन परिलक्षित हो रहा था. वैज्ञानिक आविष्कारो ने जनता के विचारों और मूल्यों को नई दिशाएं प्रदान की. सामाजिक रूढियों और अन्धविश्वासों में कमी आने लगी. भारतवर्ष पर इस परिवर्तन का प्रभाव होना स्वाभाविक था. देशी रियासतें, जो देश का अविभाज्य अंग थी, इस प्रभाव से अछूती नही रह सकती थी. महायुद्ध की परिस्थितियों ने भी रियासती जागृति मे योगदान दिया.

राजस्थान मे मेवाड़ और अन्य रियासतो के किसान और आदिवासी, जो सदियों से उत्पीड़न, शोषण और उपेक्षा का शिकार हो रहे थे, सुप्त अवस्था से जैसे जाग उठे. उनमें एक चेतना का संचार हुआ. आदिवासियो को झकझोर कर जागृत करने का सम्पूर्ण श्रेय श्री मोतीलाल तेजावत को है. उन्होने इस उत्पीड़ित, शोषित एवं प्रताड़ित जन-जाति को जगाने का दायित्व अपना सब कुछ होम कर भी अपने कंधों पर उठा लिया था

भील आन्दोलन की अहिंसक धुरी

20वीं शताब्दी के प्रथम चरण में राजस्थान मे घटित हुए क्रांतिकारी आंदोलन का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है. इस आंदोलन के मूल मे लक्ष्य-सिद्धि के लिए हिंसात्मक गतिविधियों का सहारा लिया गया था, किन्तु बिजोलिया के किसान आंदोलन और मेवाड़ के भील आंदोलनों का आधार मूलतः अहिंसक रहा, यद्यपि ये दोनों आंदोलन दीर्घकालिक और व्यापक थे हिंसक क्रांति ने राजस्थान के नवयुवकों की भावनात्मक अभिप्रेरणाओं को भले ही सजग किया हो, किंतु उनके द्वारा अर्जित उपलब्धियां नगण्य रहीं, जबकि किसान आंदोलन और भील आंदोलन की भावनात्मक और भौतिक उपलब्धियां दूरगामी एवं स्थायी रहीं.

मोतीलाल तेजावत का आविर्भाव

उदयपुर जिले के आदिवासी बहुल पर्वतीय क्षेत्र के जागीरी ग्राम कोल्यारी में ज्येष्ठ शुक्ला 1, सम्वत् 1944 को एक वैश्य (ओसवाल) परिवार में श्री मोतीलाल तेजावत का जन्म हुआ. उनके पिता का नाम नन्दलाल एवं माता का नाम केशर बाई था. उन्होंने गांव मे ही सामान्य शिक्षा प्राप्त की और हिन्दी, उर्दू एवं गुजराती

भाषाओं का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लिया. मेवाड़ के इस पर्वतीय क्षेत्र को "भोमट" नाम से भी अभिहित किया जाता था. कोल्यारी के पास स्थित एक अन्य सामन्ती गाव झाडोल में सम्वत् 1971 में 26 वर्ष की आयु में लहर बाई के साथ उनका विवाह हो गया. बाल्यकाल मे ही श्री तेजावत की साहसी और स्वाभिमानी प्रकृति का आभास होने लग गया था. वे सर्वप्रथम ठिकाना झाड़ोल के जागीरदार के यहा कामदार के रूप में कार्य करने लगे.

उत्पीड़न एवं शोषण की अनुभूतियां

मेवाड़ के महाराणा जब भी रियासत में दौरे पर जाते तो तत्कालीन रियासती परम्परा के अनुसार मेवाड़ के जागीरदारों को नौकरी के लिए विभिन्न स्थानों पर उपस्थिति देनी पड़ती थी. श्री तेजावत को झाडोल रावजी के साथ सम्वत् 1975–76 में जहाजपुर, नाहर मगरा, जयसमद आदि स्थानों पर जाने का अवसर मिला. इस भ्रमण मे उन्होने देखा कि भीलों, गरासियों एवं अन्य किसानों को पकड़ा जाता और उन्हें बेगार देने के लिए बाध्य किया जाता. घास, लकड़ी बिना मूल्य दिये ली जाती थी. मना करने पर जूतो से पीटा जाता था. गांवों के छोटे-छोटे व्यापारियो से बलेट के रूप में ली गई सामग्री की पूरी कीमत नहीं चुकाई जाती थी. कार्य में कोई त्रुटि रह जाने पर या बेगार नही देने पर तो आदिवासियों को शारीरिक यातना देना तो एक साधारण बात थी. उन्हे, भूखे, प्यासे हवालात मे डाल दिया जाता था श्री तेजावत के संवेदनशील हृदय मे इन घटनाओ से एक ओर आदिवासियों के प्रति सहज सहानुभूति प्रकट हुई तो दूसरी ओर सामन्ती अत्याचारों के विरुद्ध उनके अन्तर में विद्रोह की अग्नि सुलगने लगी. इस स्थिति को सहन करना उनके लिए कठिन था. सम्वत् 1968 से 1676 तक आठ वर्ष नौकरी करने के पश्चात् उन्होंने इन परिस्थितियों से बाध्य होकर ठिकाने की नौकरी छोड़ दी.

संघर्ष का निश्चय

भीलो पर होने वाले अत्याचारों ने उनके कोमल हृदय को झकझोर दिया. उन्होंने मन ही मन इस स्थिति से जूझने का कठिन व्रत ले लिया.

ठिकाने की नौकरी का परित्याग करने के पश्चात् उन्होंने झाड़ोल मे ही एक सेठ की दुकान पर मुनीम के रूप मे कार्य करना प्रारम्भ कर दिया. व्यापार के क्रम मे ये नित्यप्रति अधिकाधिक भीलों के सम्पर्क मे आने लगे. भीलों के साथ पशुओ से भी बुरा व्यवहार होते देखकर ये व्यथित रहने लगे. उनके पसीने की गाढ़ी कमाई विभिन्न ठिकानों के जागीरदार और लेनदेन करने वाले व्यापारी हड़प लेते थे. लगान का

भुगतान करने के बावजूद रसीद नहीं दी जाती थी और बकाया राशि बढ़ती जाती थी. इसी प्रकार साहूकारी ऋण-ब्याज और मूल के भंवर-जाल में कभी समाप्त नहीं होती थी, यद्यपि ऋण और ब्याज मिलाकर काफी बड़ी राशि साहूकारों की तिजोरी में पहुंच जाती थी. परिणामस्वरूप खड़ी फसलें काट ली जाती थी किसी स्तर पर सुनवाई होने का प्रश्न ही नहीं था. आदिवासियों के हृदय में इस सबकी प्रतिक्रिया होना तो स्वाभाविक था, किंतु उसे विद्रोह के रूप में प्रतिफलित करने वाला उस समय तक कोई नहीं था. श्री तेजावत ने ऐसे कठिन समय में यह बीड़ा उठाया और वे एक दुर्निवार संकल्प शक्ति लेकर संघर्ष की अजानी घाटियों में उतर गये.

एकाकी अभियान

उस समय की सामन्ती परिस्थितियों में जबकि मानव-अस्तित्व का मूल्य नगण्य सा था और चारों ओर अन्याय, अत्याचार की बिजलियां कौंध रही थीं, तब ऐसा निश्चय करना कितने साहस का काम रहा होगा, इस का अनुमान आज हम सहज में नहीं कर सकते. हां, दासता की उन सिसकती घड़ियों में जीने वाले व्यक्ति जो अभी शेष हैं, वे उनका अनुमान अवश्य लगा सकते हैं. श्री तेजावत का यह साहस इसलिए भी अप्रतिम था कि उस समय वे नितान्त एकाकी थे. उनका ऐसा कोई संगी साथी नहीं था, जो हर स्थिति में कंधे से कंधा मिला कर उनके साथ चलता. इतने बड़े आंदोलन का नेतृत्व प्रारंभ से लेकर अन्त तक उन्होंने अकेले किया. लाखों भील उनके अनुयायी थे, किंतु जहां तक नेतृत्व का प्रश्न है, उनका कोई भागीदार नहीं रहा. बिजोलिया, बेगूं, के किसान आंदोलन को संचालित करने एवं नेतृत्व देने वाले कई-कई कार्यकर्ता एवं नेता थे, किन्तु भील आंदोलन को उस तेजस्वी सिंह ने अकेले ही गति और दिशा दी. व्यक्तिगत शौर्य की यह कितनी रोमांचक एवं अप्रतिम स्थिति है.

श्री तेजावत की डायरी के पृष्ठ

आदिवासियों के उत्पीड़न की मर्मान्तिक वेदना से व्यथित होकर श्री तेजावत का स्पन्दनशील हृदय आलोड़ित हो उठा. उन्होंने निश्चय किया कि इस करुण स्थिति को सहन करते रहना अक्षम्य अपराध एवं क्रूरता होगी. उनके हृदय में उस समय उठे तूफान की तीव्रता का अनुमान लगाने के लिए उन्हीं के द्वारा लिपिबद्ध की गई डायरी में से कुछ उद्धरण देना समीचीन होगा. वे लिखते हैं :—

"उन दिनों सामन्तशाही राजा, महाराजा, इनके ऑफिसर, सिपाही, सहनों का और जागीरदारी जुल्म का सोलह आना बोलबाला था. सिफारिश, घूंसखोरी और जबान को ही जनता के लिए कानून बना रखा था. अत्याचारी महलकार और जुल्मी जागीरदार निजी स्वार्थ के लिए जनता को हैरान, परेशान और तबाह करते थे. उन

गरीबों पर सामन्तशाही हुकूमत का चक्र घूमता हुआ जहां-तहां देखने में आता था. राज-काज में सिर्फ अपना स्वार्थ पूरा करके तथा अपना उल्लू सीधा करके बेधड़क, जाहिर लूटपाट मचा रखी थी. जनता के हितो का रंच मात्र भी ऊपर से नीचे तक राज्य वाले ध्यान नही देते थे और अंधेरगर्दी मचा रखी थी."

"इस अंधेरगर्दी का राजवालों को पूरा पता था. जनता रिपोर्टों के द्वारा महाराजा, प्रधानों, ऑफिसरों से न्याय की उम्मीद रखते हुए आरजू करती थी. लोगों को उम्मेद थी कि न्याय मिलेगा, किन्तु न्याय तो दूर रहा, उल्टे सही कहने वालों को "बदमाश" का खिताब इनायत होता था."

"खालसा मेवाड़ में तो सब लोग, हाकिमों, नायबों, थानेदारों, हवलदारों से परेशान थे और जागीरी जनता जागीरदारी जुल्म से तंग थी जुल्मी अत्याचारी राजा और जागीरदारी एक दूसरे से मिले जुले थे और एक दूसरे की ऐबें छिपाते थे. जहां-तहां कट्टर हुकूमत, घूंसखोरी, लूटपाट करते हुए जनता पर नित नये मनगढन्त आरोप लगा कर ठगा जाता था. जनता असहाय होकर निराशा के खड्डे में गिर गई थी. गरीब और इज्जतदारों की इज्जत खतरे में थी. जुल्मों द्वारा जनता को ठग कर पैसा खा जाते थे. कही बात करने पर जूतो से पीट कर इज्जत बिगाड दी जाती थी और उल्टे दंड कर तबाह कर दिया जाता था और कमर और गर्दन तोड़ दी जाती थी. छोटे बड़े जागीरदार तो जनता को अपना गुलाम समझते थे. बिचारे अनपढ़ लोगो पर चाहे जैसा जुल्म करने का उनका हक था. औरत, जमीन, पशु, मवेशी वगैरा सरकार के लोग और जागीरदार के नौकर ले जाते थे और कोई चूं तक करने का साहस नही कर सकता था. गाय, भैंस दुहा कर जबरन दूध लेना तो उनका हक हो चुका था. घास, लकड़ी, कडे, दूध-दही, खाट, बिस्तर, बर्तन वगैरा जरूरी सामान मुफ्त मे ले लेने का पूरा हक था. अगर कोई मना करता तो धक्काधूम कर जूतों से पीट कर घर मे घुस कर ले जाते थे. ब्रिटिश सरकार का अदना आदमी इन स्टेटों मे जाता तो उसके पास शिकायत नही होने देते थे.

"ये लोग अंग्रेज अफसरों को शिकार के लिए बुलाते थे तो डेढ़ महीना पहले से सरबरा (स्वागत) के लिए बेगार मे घास, लकड़ी, बर्तन, दूध, दही, मक्खन मुफ्त में लेते थे. हर घर से एक आदमी को बेगार के लिए तैनात रहना पड़ता था. घास, लकड़ी का भारी ढेर लगवा दिया जाता था. साहब के जाने बाद बेगार मे अपने ठिकाने में ले जाकर साल भर का खर्चा बचा लिया जाता था. कोई अखबार में गुप्त खबर छपवाता तो अखबार की प्रति पर जूते फटकारे जाते थे. जागीरदारों और बड़े-बड़े हाकिमों के लिए गुप्त कर के रूप में रुपया बंधा हुआ था. अफसर जिन्दगी भर के लिए सेठ बन जाते थे. हवेलियां झुक जाती थी. नाई, कुम्हार आदि सभी जातियो से गुप्त

बेगार में काम कराया जाता और मुफ्त बर्तन लिये जाते. व्यापारियों से निरख के भाव खरीद कर रुपये पीछे चार आने छः आने दे दिये जाते."

"मुझे अभी भी कितने ही किस्से याद हैं. लेने वाले देने वाले जिन्दा हैं. रियासत का कोई बड़ा अफसर या हाकिम मर जाता तो 100 मन गेहूं और 50 मन घी पक्का खरीदने का हुक्म हो जाता. जुल्मी लोग बनियों को बुलाकर मांगते. बिचारे गिड़गिड़ाते. ये लोग दबाते, डराते और परेशान करते थे."

आदिवासी जन जीवन के साथ पूर्ण तादात्म्य

श्री तेजावत ने अपनी डायरी में अनेक प्रत्यक्ष दर्शी प्रमाण दिये हैं उन्होंने अन्याय और उत्पीड़न के शिकार व्यक्तियों की लम्बी सूची दी है. डायरी में अत्याचार के अन्य प्रकारों का भी उल्लेख किया गया है. उन सब को यहां उद्धृत करना असगत है उपर्युक्त उद्धरण केवल यह बताने के लिए दिया गया है कि उस समय सामन्ती शासन मे असहाय जनता किस प्रकार पिस रही थी. श्री तेजावत ने व्यक्तिशः इन जुल्मों को देखा और भोगा है वे रियासती जनता की नियति से पूर्णत परिचित थे. उनकी सहानुभूति मुख्यतः जनता के निम्न वर्ग के साथ थी, जो पशु से भी हीनतर जीवन का अभिशाप झेल रहे थे. श्री तेजावत की इस वर्ग के साथ न केवल सहानुभूति थी, प्रत्युत शोषित, शापित जनता के दुखो का अन्त करने के लिए उन्होंने कमर कस ली, और इसके लिए उन्होंने इसी वर्ग का अग होकर जीने की तैयारी कर ली. वे आदिवासी जन जीवन में घुलमिल कर एकरस हो गये इसीलिए वे आदिवासी जीवन की प्रत्येक धड़कन को पहचान सके और उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर सके. वे उस प्रकार के कार्यकर्ता न थे जो केवल आत्मप्रशस्ति के लिए कार्य करते हैं और अपने स्वार्थ को सर्वोपरि रखते हैं. श्री तेजावत ने जीवन की अत्यावश्यक सुविधाओं को तिलांजलि दे दी, अपने परिवार और उसके दायित्व को विस्मृत कर दिया और एक विशाल परिवार के अग बन गये. आदिवासी जन समुदाय के हृदय के झीने तंतुओं से उठने वाली रागिनी उनकी हृदय वीणा के तारों पर झंकृत हो उठी, और वे उसी में खो गये. उन्हें कोई सुध न रही. केवल एक ही लक्ष्य, एक ही धुन थी. उनका अस्तित्व इसी के लिए समर्पित हो गया. उनके हृदय की तड़फ, लगन और मूकवेदना को आज तक किसी ने नही समझा और परखा. वे इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए मिट कर अतीत की गहराइयों में खो गए और हम सबने उनको भुला दिया. काश ! उनके द्वारा अधूरे छोडे गये कार्यों के सूत्रों को हम पकड पाते और आदिवासी जन जीवन में यत्किंचित उल्लास का रंग भर पाते जो स्वाधीनता के सैंतीस वर्ष बाद भी दीन-हीन एवं सम्बलहीन अभिशप्त जीवन जीने के लिए बाध्य हैं.

चतुर्थ अध्याय

"एकी" आन्दोलन का सूत्रपात

श्री तेजावत आदिवासी जीवन की विपन्नता और विवशता से द्रवित एवं व्यग्र तो थे ही, वे दीर्घकाल तक निरुपाय होकर स्थिति को असहाय होकर देखते रहना नहीं चाहते थे. वे ऐसे अवसर की आतुरता से प्रतीक्षा कर रहे थे, जबकि आदिवासी एवं अन्य किसानों के वृहद् समुदाय से उनका सम्पर्क हो जाय और वे उन्हें संगठित कर आन्दोलन के लिए तैयार कर सकें. भाग्य से ऐसा अवसर शीघ्र ही प्राप्त हो गया. मेवाड़ में छोटे बड़े अनेक तीर्थ-स्थल हैं, जहां किसी न किसी धार्मिक पर्व पर मेले एवं विविध अनुष्ठानों का आयोजन परम्परा से होता आया है. इन मेलों में सभी जातियों और वर्गों के लोग सम्मिलित होते हैं, किन्तु निम्न वर्ग के लोग मुख्यतः आदिवासी एवं अन्य जातियों के किसान बड़ी संख्या में सम्पूर्ण आस्था एवं भक्ति के साथ एकत्रित होते हैं और देवदर्शन करके तथा विविध स्थानों के सजातीय बन्धुओं से मिलकर आह्लादित होते हैं. ऐसे अवसरों पर अपने समस्त अभावों और कुण्ठाओं को भूल कर नाचते, गाते एवं आनन्दातिरेक से विह्वल हो जाते हैं. स्थान-स्थान पर बड़ी संख्या में स्त्री-पुरुष भोजन बनाते, मेले की दुकानों पर विविध सामग्री क्रय करते और तन्मय होकर देवदर्शन

करते देखे जा सकते हैं. कुछ समय के लिए निराशा, सन्ताप और उत्पीड़न के संसार को पीछे छोड़ आते हैं. जन-संकुल परिवेश में आनन्द विभोर हो अभीष्ट-सिद्धि की कामना करते हुए देवता के चरणों में आत्म-समर्पण कर देते हैं.

लोग विविध मनोकामनाएं, मनोरथ और मनौतियां लेकर इन मेलों में आते हैं. सामुदायिक भोज अथवा जातिभोज आयोजित करते हैं और प्रसाद चढ़ाते हैं. नव विवाहित दम्पत्ति सुखी एवं समृद्ध जीवन की मंगल कामनाएं लेकर देवदर्शन को आते हैं. एक प्रकार से ये मेले ग्राम्य जीवन की समग्र धुरी बन जाते हैं.

मातृकुण्डिया का वैसाखी मेला :

चित्तौड़गढ़ जिले के मातृकुण्डिया नामक तीर्थ-स्थल पर प्रतिवर्ष वैसाखी पूर्णिमा के पावन-पर्व पर प्राचीन काल से ही एक प्रसिद्ध मेला लगता है, जिसमें अपार जनसमूह एकत्रित होता है. इस मेले में उस समय भी प्रायः एक लाख व्यक्ति एकत्रित होते थे, इसमें अधिकांश संख्या किसानों की ही होती थी.

मातृकुण्डिया बनास नदी के तट पर स्थित एक प्राचीन रमणीय तीर्थ-स्थल है. यहां एक मुख्य शिवमन्दिर होने के अतिरिक्त अनेक देवी-देवताओं के मंदिर हैं. यहां विभिन्न जातियों ने अपने अलग-अलग मन्दिर और धर्मशालाएं बना ली हैं, किन्तु सबमें साम्प्रदायिक सद्भाव और एकता है. यहां वर्ष भर यात्रियों का तांता लगा रहता है. मेले के अवसर पर तो अभिनव छटा रहती है. अब राज्य सरकार ने यहां बनास नदी पर एक बड़े सिंचाई बांध का निर्माण करवा दिया है. युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि मथुरा के तत्वावधान में वहां एक सुन्दर गायत्री मन्दिर और यज्ञ-मंडप का निर्माण हुआ है, साथ ही उस क्षेत्र में लोक-कल्याण की अनेक गतिविधियां उक्त योजना के अन्तर्गत संचालित की जा रही हैं.

एकता (एकी) का व्रत :

मातृकुण्डिया के उक्त मेले का समय सन्निकट था. श्री तेजावत और उनके साथियों ने इस मेले में सम्मिलित होने का निश्चय किया. मेवाड़ के सभी क्षेत्रों की जनता में अन्याय, अत्याचार के विरुद्ध तीव्र आक्रोश तो था ही, साथ ही बिजोलिया के किसान आंदोलन ने भी जनता के असंतोष को बढ़ाया और उनमें साहस का संचार किया. अब तो नेतृत्व देने वाले एक सच्चे कर्मवीर की आवश्यकता थी, जो इस असंतोष को निश्चित लक्ष्य की ओर मोड़ देता. ठीक ऐसे समय रंगमंच पर श्री तेजावत अवतरित हुए. श्री तेजावत ने स्थान-स्थान से आये किसानों के साथ सम्पर्क कर उन्हे प्रोत्साहित

किया. मेले में आई जनता के मस्तिष्क में अत्याचारों की विभीषिका छाई हुई थी. करीब एक लाख जनता के दिमाग में संघर्ष की लहर दौड़ गई. प्रत्येक गाँव के बुद्धिमान व्यक्ति मिले, उन्होंने परस्पर विचार-विमर्श किया. उत्साह और क्रांति की भावना में एकाएक ज्वार आ गया. सामूहिक बैठक में श्री तेजावत के आग्रह पर यह निश्चय किया गया कि जब तक स्थिति की पूर्ण जानकारी महाराणा साहब को नहीं दे देंगे, तब तक कोई भी किसान राज्यकोष में लगान का भुगतान नहीं करेगा. सभी किसानों ने धर्म और भगवान एकलिंग जी की शपथ लेकर इस निश्चय को मूर्त रूप देने का दृढ़ संकल्प कर लिया. मेले में घोषणा करवा के सभी किसानों को इसकी जानकारी दे दी गई. इसके अतिरिक्त छोटे-छोटे पर्चे लिखकर प्रत्येक गांव के पंचों को भेज दिये गये. सभी गांवों में पांच-पांच पर्चे भेज दिये गये. पर्चे का आशय यही था कि कोई भी किसान लगान जमा नहीं करावें तथा प्रत्येक गांव में एक समिति का गठन किया जावे, जो गांव की जनता को एकत्रित कर उसे उसके लिए वचनबद्ध करें एवं कोई भी व्यक्ति ग्राम के पंचों की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करे.

जब उपर्युक्त पर्चे गांवों में पहुंचे तो किसानों में उत्साह और क्रान्ति की लहर छा गई, यद्यपि उनके मन में रियासती अधिकारियों तथा सामन्ती आतंक का भय व्याप्त था, और वे छिप-छिप कर इस सम्बन्ध में बातचीत करते थे. इस जागृति का आभास रियासती शासन तथा जागीरदारों को भी हो गया था.

कुछ पर्चे मेवाड़ के सराड़ा जिले में भी पहुंचे. श्री तेजावत ने इस पर्चे की 50-60 प्रतिलिपियां करके गुप्त रूप से भील क्षेत्र के सब गांवों में भेज दी. उदयपुर जिला आदिवासी बहुल क्षेत्र है, जिसमें भीलों की संख्या सर्वाधिक है तथा सभी प्रकार से वे ही सबसे अधिक पीड़ित थे. भील परिवार के पास कृषि योग्य बहुत कम भूमि होती थी. अधिकांश भूमि पर्वतीय क्षेत्र में होने से ऊबड़-खाबड़ थी तथा उर्वरा नहीं थी. उस युग में उन्नत कृषि की किसी भी प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध होने का तो प्रश्न ही नहीं था. भील केवल कृषि पर ही निर्भर नहीं रह सकते थे. जीवन निर्वाह के लिए उन्हें घास, लकड़ी एवं वन की अन्य वस्तुएं बेच कर अपना निर्वाह करना पड़ता था. जिस वर्ष अपेक्षाकृत अच्छी उपज होती, तब भी उनको वन-सम्पदा पर निर्भर रहना होता था, क्योंकि जागीरदार, कर्मचारी अथवा बिचोलिये दुगुनी तिगुनी बकाया निकाल कर फसल पर अधिकार कर लेते थे. उदयपुर जिले के भोमट क्षेत्र का आदिवासी जन-जीवन सबसे नीचे के स्तर पर जी रहा था. दूसरे क्षेत्रो के किसान और भीलों की भी ऐसी ही स्थिति थी.

आन्दोलन की अहिंसक प्रक्रिया :

यहां विशेष ध्यान देने योग्य बिन्दु यह है
में भीतर ही भीतर विद्रोह की अग्नि धधक रह
से आंदोलन प्रारंभ से ही पूर्णतः अहिंसक था. कि
तक नहीं आया कि आवश्यकता पड़ने पर हिंसा
गांधी का यह कथन यहां पूरी तरह चरितार्थ
संघर्ष अवश्य करना चाहिए, किन्तु वह शान्तिपू
चाहिए. महात्मा गांधी के चिन्तन में साधन
था. "एकी" आंदोलन में भी इस मर्यादा का सा

कि यद्यपि किसानों और आदिवासियों
। थी किन्तु चिन्तन और क्रिया कि दृष्टि
किसी भी व्यक्ति के मन में यह विचार
का सहारा लिया जा सकता है. महात्मा
होता है कि अपने अधिकारों के लिए
पूर्ण अहिंसक साधनों द्वारा ही होना
एवं साध्य की पवित्रता पर बड़ा आग्रह
हज पालन किया गया.

आन्दोलन का लक्ष्य एकता :

"एकी" आंदोलन का मुख्य उद्देश्य
पूर्ण एकता स्थापित करना था तथा किसी भी
नहीं डिगना था. एकता स्थापित करने के
के नाम से अभिहित किया गया. "एकी आन्दो
कतिपय अन्यायमूलक लाग बागों को समाप्त
थी और उनके पारिवारिक एवं सामाजिक जीव

अशिक्षित आदिवासियों और किसानों में
स्थिति में निश्चित लक्ष्यों से तनिक भी
इस अभियान को ही "एकी आन्दोलन"
लन" के अन्तर्गत अनुचित भूमिकर एवं
करना था, जो किसानों के लिए असह्य
न के साथ खिलवाड़ कर रही थी.

श्री तेजावत ने बहुत ही गुप्त तरीके से
उद्देश्यों को प्रसारित किया. उन्होंने व्यक्ति
आदिवासियों को समझाया. आदिवासियों का
से ग्रस्त था, वे किस प्रकार न्यूनतम आवश्य
अन्याय, अत्याचार के निर्मम प्रहारों से किस प्र
यह उन्हें भली भांति बताया गया. उन्हें समझा
उन्हें काल्पनिक स्वप्नों के भ्रमजाल में तनिक
जैसी तो कोई बात ही नहीं थी. उन्हें बताया
शिकंजा हट जाता है तो उनके जीवन में प्रकाश
है और उनका पारिवारिक एवं सामाजिक
कर सकता है.

बोमट क्षेत्र के गांव-गांव में आन्दोलन के
गत रूप से स्वयं गांवों में जा-जा कर
जीवन किस प्रकार नारकीय यन्त्रणाओं
कताओं से वंचित किये जा रहे थे और
कार उन्हें प्रताड़ित किया जा रहा था,
या गया कि उनकी न्यूनतम मांगें क्या हैं.
भी नहीं डाला गया, क्योंकि यहां स्वार्थ
ा गया कि यदि उत्पीड़न एवं अन्याय का
की छोटी सी किरण प्रवेश पा सकती
जीवन यत्किंचित मानवीय स्तर का स्पर्श

निश्छल एवं निर्मल नेतृत्व :

श्री तेजावत की स्पष्टवादिता एवं हृदय
रंचमात्र भी महत्वाकांक्षा नहीं थी. वे बार

की निर्मलता बेजोड़ थी. उनके मन में
करते थे तो सीधे हृदय के स्तर पर बात

करते थे, जो सामने वाले के हृदय को छू लेती थी. इस प्रकार वे आदिवासियों पर अपनी विश्वसनीयता की अमिट छाप डाल देते थे और उनके हृदय को सदा के लिए जीत लेते थे. आदिवासियों के मन में यह बात घर कर गई कि श्री तेजावत उनके हित की ही बात करते हैं. वे उन्हें किसी भी प्रकार की मृग-मरीचिका में फंसाना नहीं चाहते. वे उनको अपना सबसे बड़ा हित-चिन्तक समझने लगे. पारस्परिक विश्वास और आत्मीयता का जो बन्धन श्री तेजावत और लाखों आदिवासियों के बीच स्थापित हुआ, वह आजन्म बना रहा.

आन्दोलन का श्रीगणेश :

श्री तेजावत ने आन्दोलन का श्रीगणेश झाड़ोल और फलासिया के गांवों से किया. इस क्षेत्र के भीलों को समझा बुझा कर अपने विश्वास में लिया. इसी क्षेत्र के निवासी होने से उनके लिए आन्दोलन यहीं से प्रारम्भ करना सुविधाजनक भी रहा. इसी के पड़ौस के पांच गांवों को भी उन्होंने क्रमशः आन्दोलन के अन्तर्गत ले लिया. आन्दोलन धीरे-धीरे फैल रहा था और उसकी जड़ें गहरी होती जा रही थी. भील "एकी आन्दोलन" के अन्तर्गत आते जा रहे थे. आंदोलन अभी प्रचार के स्तर पर था और गुप्त रूप से ही चलाया जा रहा था. भीलों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी.

श्री तेजावत ने सर्व प्रथम झाड़ोल में पांच व्यक्ति आन्दोलन में सहयोग करने के लिए तैयार किये. वे व्यक्ति थे:—

(1) बाला लुहार, (2) नीला शंकर ब्राह्मण, (3) किशन जोशी, (4) लच्छी राम साधु और (5) अम्बावा कुम्हार. इन पांचो व्यक्तियों को श्री तेजावत एक दिन अर्धरात्रि के समय महादेव के मन्दिर में ले गए और भगवान की मूर्ति के हाथ लगाकर उनकी साक्षी में यह व्रत लिया कि वे सदैव एक होकर रहेंगे और आन्दोलन की सफलता के लिए मनोयोगपूर्वक कार्य करते रहेंगे. ये व्यक्ति इस आशय के गुप्त पत्र लेकर आस-पास के सब गांवों में गए कि अमुक दिन बदराना गांव में श्री हरिहर के मन्दिर में बैठक होगी, जिसमें प्रत्येक गांव से समझदार एवं विश्वास-पात्र आदमी भेजे जावें.

बदराना की प्रथम बैठक :

प्रथम बैठक सम्वत् 1918 (सन् 1921) के ज्येष्ठ कृष्णा 14 एवं अमावस्या को हुई. श्री तेजावत एवं उनके साथी बैठक से एक दिन पूर्व अपने साथियों के साथ

बदराना पहुंच गए. सभी गांवो में विद्युत के समान बात फैल गई थी. भीलों में उत्साह की लहर फैल गई. एक प्रकार से डूबते हुए को तिनके का सहारा मिला. प्रत्येक गाँव के पंच बैठक में सम्मिलित होने पहुंचे. करीब 500 से 700 के बीच उपस्थिति थी. बैठक मे विचार विमर्श हुआ. जैसे जैसे सम्मिलित होने वालों की संख्या बढ़ती गई, वैसे-वैसे उनका उत्साह और साहस बढ़ता जाता था. उन पर होने वाले अत्याचारों की कहानी सबके सम्मुख प्रकट रूप से कहने की उनमें शक्ति जगी. भगवान की साक्षी में सभी गावों के भीलों मे एकता स्थापित की गई. भीलों ने परस्पर तन, मन, धन से सहायता करने का व्रत लिया और यह प्रतिज्ञा की कि मातृकुण्डिया के मेले में वृहत्तर मेवाड़ के किसानों ने जिस प्रकार लगान नहीं देने का निर्णय लिया, वैसा ही वे भी करेंगे और जब तक अनुचित लागबागो और दासता के निमर्म अंकुश समाप्त नहीं होगे, तब तक वे "एकी आन्दोलन" में सक्रिय भाग लेते रहेंगे.

इस बैठक का व्यापक प्रभाव हुआ. ऐसा प्रतीत होता था जैसे लोग इस आन्दोलन की प्रतीक्षा ही कर रहे थे. इसका कारण यह था कि वे निरंकुश अत्याचारो की लम्बी शृंखला से ऊब चुके थे और उनके उत्पीड़न का कोई अन्त नहीं था. अन्यायी जागीरदारों और कर्मचारियों के विरुद्ध तीव्र आक्रोश परिलक्षित होने लगा. जनता की सुप्त शक्ति अगड़ाई लेती प्रतीत हो रही थी. जैसे-जैसे जनता शक्ति से मंडित होती जा रही थी, वैसे-वैसे जागीरदारो और रियासत के कर्मचारियों में कुतूहल और व्याकुलता फैल रही थी.

बैठक में आये हुए व्यक्तियों ने अपने-अपने गांवो में जाकर बैठक का विवरण सुनाया तो जनता में चौगुना उत्साह छा गया. सब तरफ 'एकी' मे रहने का संकल्प दिखाई दे रहा था. वे लोग आपस में कहने लगे कि युग पलट गया है. जो लोग मध्यस्थ बनकर जागीरदारों और कर्मचारियों को रुपया दिलाते रहते थे, वे इस आन्दोलन के विरुद्ध थे. उन्होंने भीलों को यह कह कर भयाक्रान्त करना प्रारंभ किया कि राज्यशक्ति से विद्रोह करोगे तो मारे जाओगे. राज्य सत्ता कुचल कर उनका सर्वनाश कर देगी. इससे कतिपय "कच्चे हृदय" वाले व्यक्ति भले ही पीछे रह गये हो किन्तु अधिकांश लोगों पर जो वर्षों से उत्पीडन की नारकीय यन्त्रणा भुगत रहे थे, इस धमकी का कोई प्रभाव नहीं हुआ. वे कठिन परीक्षा के लिए कटिबद्ध हो गये. वे कहने लगे कि चाहे उन्हें मरना ही क्यो न पड़े वे पीछे नहीं हटेंगे. उनका कहना था कि भगवान ने हमारे लिए "एकी" का संदेश भेजा है, हम मरते दम तक इसी में रहेंगे.

बदराना की द्वितीय बैठक :

इसी क्रम मे दूसरी बैठक बदराना के ही श्री हरिहर महादेव के मन्दिर में संम्वद् 1978

ज्येष्ठ शुक्ला 10 को हुई. इस बैठक में आदिवासियों के अतिरिक्त महाजन, ब्राह्मण भी थे. लगभग एक हजार से बारह सो के बीच व्यक्ति एकत्रित हुए. रात्रि के समय विचार-विमर्श हुआ. बैठक में यह निश्चय किया गया कि यह मालूम करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए कि मातृकुण्डिया के मेले मे "एकी" आन्दोलन के सम्बन्ध में लिए गए निर्णयानुसार मेवाड़ के खालसा क्षेत्र का अगुआ कौन है. ताकि उससे सम्पर्क साध कर आदिवासी क्षेत्र के प्रतिनिधि भी उनके साथ सहयोग कर आन्दोलन को गति दे सकें. बैठक में यह भी निर्णय लिया गया कि प्रत्येक गाँव से दो समझदार व्यक्ति (पंच) आवश्यक खर्च एवं अन्य साधन जुटाकर इस कार्य के लिए उदयपुर जावें. झाड़ोल से प्रतिनिधि के रूप में स्वयं श्री तेजावत इस कार्य के लिए नियुक्त किये गये. कुल मिलाकर 42 व्यक्ति ज्येष्ठ शुक्ला 10 को ही बैठक के पश्चात् आदिवासी क्षेत्र से उदयपुर के लिए रवाना हुए.

प्रथम प्रतिनिधि मंडल :

श्री तेजावत उस समय झाडोल में सेठ जवेरचन्द नाथूलाल पुंजावत की दूकान पर मुनीम के रूप मे कार्य करते थे. झाड़ोल की जनता ने एक स्वर से कहा कि उनका वे ही प्रतिनिधित्व कर सकते हैं. श्री तेजावत ने इस तथ्य को अपनी डायरी मे रेखांकित किया है कि आदिवासी क्षेत्र के इस प्रतिनिधि मंडल का मार्ग में पड़ने वाले सभी गाँवों में हार्दिक स्वागत हुआ. जिस गाँव में से होकर ये लोग निकलते, वहां दूना उत्साह बढ़ जाता. गाँव-गाँव के लोग इनसे प्रेरित होकर स्वतः कहते कि वे भी उदयपुर पहुंच रहे हैं. यह दल नाई गाँव के पास नादेश्वर महादेव के स्थान पर पहुंचा. वहां दिन में तीन बजे भरसीगढ़ क्षेत्र के प्रतिनिधियों की बैठक हो रही थी. यह दल भी इस बैठक में सम्मिलित हो गया. बैठक में लिए गए निर्णय के अनुसार दोनों दल वचनबद्ध होकर संयुक्त हो गए. दोनों दलों ने एक स्वर से श्री तेजावत को अपना नेता मान कर उनमें पूर्ण विश्वास प्रकट किया. वहां की जनता ने भी उन्हे आश्वस्त किया कि वे आन्दोलन को गति देने के लिए जो भी कदम उठाएंगे, वह उन्हें स्वीकार्य होगा. उदयपुर पहुंच कर दल के 41 व्यक्ति पीछोला झील के निकट श्री लाभ चन्द छापिया के मकान पर ठहरे. नित्य नगर में आते और मेवाड़ रियासत के खालसा क्षेत्र के जो भी किसान मिलते उनसे आन्दोलन की प्रगति के सम्बन्ध में पूछताछ करते. किसानों से विदित हुआ कि मातृकुंडिया में बैसाखी के मेले में "एकी आन्दोलन" के बारे में जो कुछ निर्णय लिया गया था, गाँव-गाँव में उसी की चर्चा है और किसानों ने रियासत को भूमि कर का भुगतान नहीं करने का निश्चय किया है. श्री तेजावत ने यह भी मालूम करने का प्रयत्न किया कि खालसा क्षेत्र में किसानों का नेतृत्व करने वाला कौन व्यक्ति है. उन्हें बताया गया कि पांडोली गाँव का गोकुल पटेल खालसा क्षेत्र में हुई प्रगति की पूरी जानकारी उन्हे दे

सकेगा. श्री तेजावत ग्रौर उनके साथियों ने गोकुल पटेल से सम्पर्क साधना ग्रावश्यक समझा. इस समय तक उदयपुर नगर में ग्रांदोलन की कुछ भी चर्चा नहीं थी.

पांडोली के लिए प्रस्थान :

42 ग्रादमियों का पूरा दल ट्रेन द्वारा पांडोली स्टेशन पर पहुंचा तथा गोकुल पटेल को मिलने के लिए संदेश भेजा. पटेल ग्राया किन्तु इतने व्यक्तियों को देखकर चौकन्ना हो गया. उसने बताया कि यह गांव वेदला ठिकाने का है. किसी को मालूम हो जाने पर संकट खड़ा हो सकता है, ग्रतः इन सब व्यक्तियों को भैरूजी के मन्दिर में छिपा दिया ग्रौर उनके साथ गुप्त रूप से बात करने लगा. पटेल ने मातृकुण्डिया में लिए गए निर्णय के क्रम में ग्रागे जो कुछ हुग्रा, उसका विवरण दल को दिया. किन्तु श्री तेजावत ने पटेल को सतर्क करते हुए कहा कि छिपकर बात करने से लोगों को ग्रधिक संदेह होगा. यह भी संभव है कि वे गुप्त बातचीत का ग्रलग ही ग्रर्थ लगा लें. श्री तेजावत ने कहा कि उनका दल प्रतिनिधि मंडल के रूप में उनके गांव में ग्राया है. यह दल कई गांवों में होता हुग्रा जहां-जहां से गुजरा है, वहां-वहां की जनता में पूरी बात फैल गई है. यह भी संभव है कि उदयपुर से कोई गुप्तचर भी उनके साथ हो गया हो. 42 व्यक्ति छिपकर भी नहीं रह सकते. पटेल को यह तर्क जंचा तथा वह ग्रब ग्राश्वस्त भी हो गया था. उसे यह भी विश्वास हो गया था कि श्री तेजावत एवं उनके दल के ग्रन्य लोग उदयपुर जिले के ग्रादिवासी क्षेत्र के निवासी हैं. ग्रब वह निर्भीक हो गया तथा दल के सभी व्यक्तियों को मन्दिर से ग्रपने घर ले गया. उसने प्रतिदिन सत्कार में कोई कमी नहीं की. ब्राह्मण को बुला कर उनके लिए भोजन बनवाया गया. गांव में यह खबर ग्राग की तरह फैल गई कि ग्रादिवासी क्षेत्र के पंच ग्राये हैं. ग्रामवासी बड़े ही स्नेहपूर्वक मिले ग्रौर दल का स्वागत करते हुए उत्साहपूर्वक बातचीत की. श्री तेजावत ने गांव वालों के साथ विचार-विमर्श किया. फलस्वरूप गांव वालों के मन मे जो काल्पनिक भय था, वह जाता रहा. दल के लोग गांव में भी गए. गोकुल पटेल ने ग्रब बातचीत में प्रसन्नतापूर्वक पूरा सहयोग दिया.

गांव वालों में प्रारम्भ में बाहर के ग्रपरिचित व्यक्तियों के प्रति स्वाभाविक रूप से सतर्कता मिश्रित संकोच होता है. इसका कारण यह है कि वे ग्रनावश्यक रूप से विपत्तियों ग्रथवा समस्याग्रों को ग्रामन्त्रण नहीं देते, किन्तु जब वे एक बार पूर्णतः ग्राश्वस्त हो जाते हैं तो वे मुक्त हृदय से ग्रागन्तुकों का ग्रादर सम्मान करते हैं. ठीक यही बात श्री तेजावत ग्रौर उनके दल के साथ घटित हुई. गांव वालों की सतर्कता में ग्रनादर एवं ग्रहं के लिए कोई स्थान नहीं होता, इसलिए बाहर वालों के ऊपर इसका विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता.

केशर खेड़ी का भोज।

अब जबकि सारा मानसिक संकोच छंट चुका था तो गोकुल पटेल ने श्री तेजावत के समक्ष प्रस्ताव रखा कि पांडोली से दो मील की दूरी पर केशर खेड़ी नामक जाटों का एक गांव है. वहां एक बड़े भोज का आयोजन किया गया है, जिसमे कपासन जिले के ढाई-तीन हजार जाट भाग लेंगे. "एकी" आंदोलन की आगे की गतिविधि के सम्बन्ध मे वहां सार्थक बातचीत हो सकती है क्योंकि पूरे जिले के लोगों से सम्पर्क साधने का अवसर मिलेगा. प्रस्ताव बहुत अच्छा था. श्री तेजावत के दल को इसे स्वीकार करने में कोई हिचकिचाहट नहीं हुई. संध्या के भोजन के पश्चात् श्री तेजावत के दल के 42 व्यक्ति और पांडोली के सभी जाट बंधु प्रस्थान करके केशर खेड़ी पहुंचे.

जब केशर खेड़ी मे एकत्रित जाटों को यह विदित हुआ कि उदयपुर जिले के पर्वतीय क्षेत्र (भोमट) के आदिवासी बन्धु "एकी" आंदोलन में सहयोग देने के लिए आए हैं तो उनके हर्ष की सीमा नही रही.

केशर खेड़ी की बैठक एवं प्रस्ताव :

श्री तेजावत से झुंड के झुंड व्यक्ति मिलने के लिए आए और परस्पर बड़े स्नेह से मिले. बाद में सभी जाटों और श्री तेजावत के दल की सम्मिलित बैठक हुई. बैठक मे सार्थक विचार विमर्श हुआ. किसी तरह का संकोच अथवा सतर्कता दोनों ही पक्षों में परिलक्षित नही हुई मेवाड़ के खालसा क्षेत्र और आदिवासी क्षेत्र के प्रतिनिधियों में लिखित एकता (एकी) हो गई. इस वचन का आदान-प्रदान हो गया कि दोनों ही पक्षों में कोई भी पीछे हटने वाला या विचलित होने वाला नहीं होगा. यदि किसी ने विश्वास घात किया तो पंच उसके विरुद्ध आवश्यक कार्यवाही करेंगे.

जब आगे यह प्रश्न उठा कि आन्दोलन को गतिशील बनाने के लिए अब क्या कदम उठाया जाना चाहिए तो श्री तेजावत ने बैठक में यह प्रस्ताव रखा कि उनको सर्व प्रथम अपने ऊपर हो रहे अन्याय, अत्याचारों एवं कष्टो की गाथा लिखित रूप में सप्रमाण, महाराणा -साहब के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए, तथा इन अत्याचारों और समस्याओं का खालसा एवं आदिवासी क्षेत्र में भरपूर प्रचार करना चाहिए. उन्होंने यह भी कहा कि उन्हें सत्य का अवलम्ब किसी भी स्थिति में नहीं छोड़ना चाहिए. अपने सत्य पक्ष को दृढ़ता से पकड़े रहना चाहिए, अन्यथा उनके राज्य के अधिकारी, कर्मचारी एवं जागीरदार उनके झूठे पक्ष को सत्य प्रमाणित करने का भरसक प्रयत्न करेंगे तथा, जनता में फूट डलवा कर आन्दोलन को कुचल देंगे. यह विपरीत स्थिति आन्दोलन के लिए अतीव अनिष्टकारी होगी, इसलिए जनता की मांग महाराणा साहब के समक्ष प्रस्तुत करने से पूर्व किसी तरह की अवांछित स्थिति उत्पन्न नही होने

देना चाहिए. श्री तेजावत ने कहा कि जब जनता की बात सर्वथा स्पष्ट एवं गुनी होगी तो उसको कोई भी पक्ष अनुचित रूप देने का साहस नहीं कर सकेगा. जिन लोगों की अन्याय, अत्याचार ढाने की प्रवृत्ति पुरानी पड़ गई है, उन्हें एकाएक कड़वी दिखाना कठिन होगा, किन्तु यदि जनता ने अपने सत्य पक्ष को दृढ़ता से पकड़े रखा तो उनको झुकने के लिए बाध्य होना पड़ेगा.

सत्य के पुजारी तेजावत :

श्री तेजावत के चरित्र की यह एक महती विशेषता है कि उन्होंने सत्य और अहिंसा का सम्बल कभी नहीं छोड़ा तथा कितनी ही दुर्लंघ्य समस्याएं उपस्थित होने पर भी वे सत्य के पथ पर अडिग रहे. उनके चरित्र के इस सुनेपन और सत्याचरण ने उनको लाखों आदिवासियों का प्रिय बना दिया. आदिवासी अपने कष्टों की बात श्री तेजावत को सौंप कर वैसे ही निश्चिन्त हो जाते थे, जैसे कि एक बालक अपने पिता की गोद में में निश्चिन्त रहता है. श्री तेजावत ने जनता को पूरी तरह समझा दिया कि अन्यायी लोगों के अत्याचारों का जवाब सच्चाई की राह पर रह कर ही दिया जा सकता है. सच्चाई के मार्ग के अतिरिक्त और कोई मार्ग निरापद नहीं हो सकता.

सर्वसम्मत निर्णय :

बैठक में सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया गया कि उन सबको आषाढ़ कृष्णा को उदयपुर में मिलना चाहिए. साथ में अन्याय, अत्याचार के सभी बिन्दुओं का एक ज्ञापन सप्रमाण लिखकर साथ में लाना चाहिए तथा जब तक उक्त ज्ञापन महाराणा साहब को पेश नहीं कर दिया जाय तब तक जनता को राज्य के साथ सभी प्रकार के व्यवहार से हाथ खींच लेना चाहिए.

उदयपुर पहुंचने में केवल तीन दिन शेष रह गए थे. बैठक के पश्चात् श्री तेजावत ने अपने दल के साथ ज्येष्ठ शुक्ला 10 को कोशर खेड़ी से प्रस्थान करके कपासन स्टेशन पर ट्रेन पकड़ी तथा खेमली स्टेशन पर उतर कर धासा गांव पहुंचे. धासा के पटेल और गांव की जनता से सम्पर्क किया और उनको बताया कि मांडोली में सालसा के पंचों और भोमट के पंचों में "एकी" हो गई है. वहां के सभी पंचों ने विवरण को शान्तिपूर्वक सुना. मानजी पटेल ने सुझाव दिया कि उसी दिन भाकरला गांव में "खलिहानों का भोज" आयोजित किया गया है. उसने श्री तेजावत और उनके दल को भी इस भोज में सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया और कहा कि वहीं बातचीत कर निर्णय लेने में सुविधा रहेगी.

श्री तेजावत ने इस सम्बन्ध में अपनी डायरी में उल्लेख किया है कि उनके दल में कुछ व्यक्ति बड़े ही बुद्धिमान, प्रत्युत्पन्न मति एवं शीघ्र निर्णय लेने वाले थे, जिनका अपने क्षेत्र में भी नाम था. ऐसे व्यक्तियों में उन्होंने गेन्दाजी ब्राह्मण गोगलावाला, दल्ला गूजर एवं लच्छी राम पानेरी के नामों का विशेष उल्लेख किया है.

तेजावत का दायित्व-निर्वाह :

श्री तेजावत ने ऐसे अवसरों पर अपने दायित्व का भी अपनी डायरी में उल्लेख किया है. उन्होंने लिखा है कि बैठक में जनता के एकत्रित हो जाने पर वे भाषण देने के लिए प्रस्तुत हो जाते और मेवाड़ राज्य तथा जागीरदारों द्वारा किये जा रहे अन्याय एवं अत्याचारों के सभी बिन्दु विवरण सहित क्रमवार विस्तृत रूप से उनके समक्ष स्पष्ट करते थे. वे कहते थे कि वे अन्याय का न्याय से और असत्य का सत्य से सामना करेंगे. उनकी दृढ़ धारणा थी कि मात्र यही सीधा, सच्चा रास्ता था. इस कार्य के लिए तन, मन और धन से कटिबद्ध रहना चाहिए, सभी वे देश एवं जाति का किंचितमात्र हित करने की बात सोच सकते हैं. इसके लिए उन्हें पूरी एकता रखना होगा तथा भेदभाव एवं फूट के प्रति निरन्तर सचेत रहना होगा. यदि ऐसा हुआ तो उनकी जीत निश्चित है.

माकतला गांव की बैठक :

इसके पश्चात घासा गांव के पटेल एवं श्री तेजावत अपने दल सहित माकतला गांव पहुंचे. वहां एक बड़े भोज में गिरवा जिले के 4-5 हजार किसान एकत्रित हुए थे. रात्रि को श्री महादेवजी के मंदिर के पास चौराहे पर बैठक हुई जो रात्रि भर चलती रही. यहां भी "एकी" रखने की बात पक्की हो गई तथा सभी बन्धु भगवान की साक्षी में लिखित रूप से वचनबद्ध हो गए. श्री तेजावत ने गिरवा जिले के सभी पंचों को भी अपनी दुख-दर्दों की लिखित रिपोर्ट के साथ आषाढ़ कृष्णा 9 को उदयपुर पहुंचने का आग्रहपूर्वक आह्वान किया. उन्होंने यहां भी स्पष्ट कर दिया कि जिस गांव के प्रतिनिधि उदयपुर नहीं पहुंचेंगे वे विरोधी समझे जाएंगे.

कैलाशपुरी की सभा :

श्री तेजावत एवं उनके दल ने उदयपुर पहुंचने से पूर्व अगला पड़ाव ज्येष्ठ शुक्ला 15 को कैलाशपुरी (एकलिंगजी) में करने का निश्चय किया. वे दल सहित एकलिंगजी पहुंचे तथा धर्मशाला में विश्राम किया. एकलिंगजी में पूर्व की ओर पहाड़ पर श्री आनन्दा माताजी का एक प्राचीन मन्दिर है. ज्येष्ठ की पूर्णिमा के पावन अवसर पर पूजा उपासना हेतु गांव के सभी लोग वहां जुलूस के रूप में जाते हैं. भगवान एकलिंगजी

के मंदिर के गोस्वामी जी श्री कैलाशानन्द पुरीजी भी वहां पधारे. यह विदित होने पर कि श्री तेजावत अपने साथियों सहित कैलाशपुरी आए हुए हैं. उनको भी माताजी के दर्शनार्थ औपचारिक निमन्त्रण भेजा गया. अतः वे भी अपने दल के साथ पवित्र मन्दिर की यात्रा में ग्रामवासियों के साथ सम्मिलित हुए.

श्री तेजावत के इस अभियान की यह विशेषता थी कि वे उनकी यात्रा के मार्ग मे पड़ने वाले सभी गांवों में "एकी आन्दोलन" का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार करते जाते थे इसका एक सुफल यह हुआ कि उनके प्रथम आन्दोलन को व्यापक आधार मिल गया. साथ ही वे एक विशाल जन-समुदाय के निकट आ गये जो कि उनके भावी कार्यक्रम की दृष्टि से बहुत ही आवश्यक था. प्रत्येक गांव के जन-समुदाय के समक्ष वे दो टूक बात रखते थे और वह यह थी कि राज्य और जागीरदारों द्वारा जिन अन्यायमूलक बधनों में वे जकड़ दिये गये हैं, उनको तोड़कर फेंक देना होगा. उन्होंने सभी गांवों की जनता को यही संदेश दिया कि इस प्रकार की अमानवीय परिस्थितियों को वे अब सहन नहीं करेंगे सदियों से वे नृशंस अत्याचार और शोषण के शिकार रहे हैं, उन्हें पशु से भी हीन समझा गया है और भोले भाले, निरीह प्राणियों के जीवन को निर्दयतापूर्वक कुचला गया है.

देवी की पूजा, उपासना के पश्चात् वे सब एक सभा में परिवर्तित हो गए, जिसमें श्री तेजावत ने उपर्युक्त विचार प्रकट किये. सभा में सभी पंचों ने पूर्ण ऐक्य की भावना प्रदर्शित की.

भगवान एकलिंगजी का आशीर्वाद :

श्री तेजावत अपने दल के साथ गोस्वामीजी महाराज से भी मिले. "एकी आंदोलन" की बात अब तक पूरे मेवाड़ राज्य में फैल गई थी गोस्वामीजी इस आन्दोलन से अवगत थे. उन्होने श्री तेजावत एवं उनके साथियों को आशीर्वाद दिया और कहा कि यह सब भगवान की प्रेरणा से हो रहा है, किन्तु लोगों को मालूम नही है कि इस आन्दोलन के पीछे ईश्वर का हाथ है. ईश्वर की कृपा आगे भी मिलती रहेगी. उन्होंने श्री तेजावत एवं उनके दल की मंगलमय कामना करते हुए कहा कि ईश्वर की प्रेरणा के अनुसार ही साहसपूर्वक आगे बढ़ते आवें. श्री तेजावत ने व्यंगपूर्वक गोस्वामीजी से निवेदन किया कि उनका कोई मालिक नही रहा. जिसे वे मालिक समझते थे वे जागीरदार और अधिकारी सत्ता के मद में अन्धे हो गए और अत्याचार करने लगे हैं. अब तो उनके मालिक भगवान एकलिंगजी हैं या जनता हैं. श्री तेजावत ने यह भी स्पष्ट किया कि आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा को वे महाराणा साहब की सेवा में प्रस्तुत होंगे और उन्हें एक ज्ञापन देंगे. उससे पूर्व वे भगवान एकलिंगजी की सेवा मे प्रार्थी के रूप

में उपस्थित हुए हैं. क्योंकि मेवाड़ राज्य के शासक तो भगवान एकलिंगजी ही हैं; महाराणा साहब तो उनके दीवान ही हैं. गोस्वामीजी इस बात से बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उत्साह और साहस बनाये रखने की प्रेरणा दी. श्री तेजावत ने भगवान के मस्तक पर अर्पित पुष्पों में से एक पुष्प आशीर्वाद के रूप में मांगा, वह उन्हें दिया गया. भविष्य में होने वाली सभी बैठकों में श्री तेजावत भगवान एकलिंगजी के पुष्प की साक्षी में "एकी" करने की बात कहते थे. यहां इस तथ्य का उल्लेख करना उचित होगा कि उस समय और संभवत: आज भी मेवाड़ की जनता भगवान एकलिंगजी और महाराणा के प्रति अगाध श्रद्धा और भक्ति भाव रखती आई हैं. यद्यपि राज्य के कर्मचारियों और जागीरदारों द्वारा जनता पर असह्य अत्याचार किये गये हैं, फिर भी भगवान एकलिंगजी और महाराणा के प्रति श्रद्धा और भक्ति में कोई कमी नहीं आई. जनता का आक्रोश मूलत: राज्य के अधिकारियों, कर्मचारियों एवं जागीरदारों के प्रति केन्द्रित था, जो नितांत शान्तिपूर्ण एवं अहिंसक रहा.

भील आन्दोलन के आदर्श :

आज जब श्री तेजावत की नि:स्वार्थ सेवाओं का उल्लेख किया जा रहा है, तो उसमें सबसे महत्वपूर्ण बात यही है कि इतने बड़े आन्दोलन का संचालन करते हुए भी उन्होंने अहिंसा, सत्य एवं शान्ति के मार्ग को कभी नहीं छोड़ा. इसके लिए उन्हें जीवन भर आत्मोत्सर्ग करना पड़ा, किन्तु वे अपने मार्ग से कभी भी विचलित नहीं हुए. श्री तेजावत को पूर्वगामी किसी आन्दोलन से स्पष्ट दिशा निर्देश भी नहीं मिला था, फिर भी उन्होंने अपने आंदोलन को प्रारम्भ से जो दिशा दी, वह अत्यन्त गरिमापूर्ण थी. श्री तेजावत के दूरगामी सन्तुलित चिन्तन की यह महत्वपूर्ण विशेषता थी.

पीछोला भील की बड़ी पाल का मंच :

सम्वत् 1978 की आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा को आयड़ गांव के पास गंगू भें नामक पवित्र स्थान पर गिरवा जिले के 100–150 डागी आकर ठहरे. श्री तेजावत ने उनके समक्ष प्रस्ताव रखा कि नगर से इतना दूर बैठे रहने से उनकी बात वांछित व्यक्तियों तक नहीं पहुंच सकेगी, अत: उन्हें उदयपुर की पीछोला झील की बड़ी पाल पर अपना डेरा डालना चाहिए. वहां से नगर और राजमहल निकट ही है तथा वहां ठहरने के लिए छायादार वट और पीपल के बहुत से वृक्ष हैं, अत: वह स्थान सभी प्रकार सुविधाजनक रहेगा. श्री तेजावत की बात का सभी ने समर्थन किया और वे तत्काल बड़ी पाल के लिए रवाना हो गए.

विशाल राजमहलों की छाया में पीछोला झील की बड़ी पाल पर आश्रय-स्थल स्थापित करना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किसानों के लिए साधारण बात नहीं थी. वे

सहमते हुए किंचित भयभीत से लगते वहां पहुंचे, किन्तु श्री तेजावत जैसा साहसी एवं निर्भीक व्यक्ति उनके साथ था. वे उन्हें विश्वास, साहस एवं उत्साह का निरन्तर सम्बल देते रहे. ज्यों-ज्यों अधिकाधिक किसान वहां पहुंचने लगे, वैसे-वैसे उनके हृदय में निडरता का संचार होने लगा.

राजमहल के सन्निकट बड़ी संख्या में किसानों का एकत्रित होना स्वयं में एक असामान्य बात थी. यह स्वाभाविक ही था कि यह बात महाराणा साहब तक पहुंचती, किन्तु जैसा कि आम तौर से होता है, महाराणा साहब के इर्द-गिर्द रहने वाले व्यक्तियों ने उनको भ्रामक समाचार देना प्रारम्भ कर दिया था कि मेवाड़ के कतिपय बदमाश एवं निठल्ले लोग, जिनके पास कोई कामकाज नहीं है, वे जनता को बहका रहे हैं और उसे विद्रोह के लिए विवश कर रहे हैं.

किन्तु महाराणा बुद्धिमान एवं दूरदर्शी थे. वे वास्तविक स्थिति का पता लगाना चाहते थे.

एकीकृत ज्ञापन — मेवाड़-पुकार :

इधर तीन-चार दिन में प्रायः सात-आठ हजार किसान एकत्रित हो गये थे. गांव-गांव से आने वाले पंच एवं प्रतिनिधि अपने साथ लिखित रूप में सप्रमाण अन्याय अत्याचार का विवरण लाते जा रहे थे और श्री तेजावत को देते जा रहे थे. इन सबको पढ़ना भी एक बड़ी समस्या थी, फिर भी जितनी पढ़ी गई, पढ़ी. अब उनके समक्ष यह समस्या आई कि इतने अधिक विवरणों का संक्षेपीकरण एवं सार एक एकीकृत ज्ञापन में किस तरह समेटा जाय. उन्होंने सोचा कि सभी विवरणपत्रों के सही-सही बिन्दुओं का सारांश लेकर एक पुस्तिका लिखी जाय साथ ही प्रत्येक विवरण के सारांश से प्रतिनिधियों को अवगत किया जाय यह प्रक्रिया सभी प्रतिनिधियों को जंच गई. उन्होंने इस कार्य का भार श्री तेजावत पर ही डाला.

श्री तेजावत ने पुस्तिका लेखन का कार्य प्रारम्भ किया, जिसे उन्होंने "मेवाड़-पुकार" की संज्ञा दी. श्री तेजावत रात्रि में जितना लेखन-कार्य निपटा लेते थे, वह नित्यप्रति प्रतिनिधियों को बैठक में सुना दिया करते थे. उन्होंने पुस्तक में मेवाड़ के विविध क्षेत्रों में जनता के साथ होने वाले उत्पीड़न एवं शोषण का क्रमवार विवेचन किया. सभी प्रकार के दुख-दर्द एवं कष्टों का विवरण पुस्तिका में समाहित कर लिया गया. उसमें रिश्वत, अनुचित लाग-बाग, शारीरिक यातनाएं एवं विविध कष्टों का सप्रमाण एवं नामजद विवरण दिया गया. उक्त पुस्तिका में करीब 100 कलमें हो गई थीं, इनसे जनता पर होने वाले जुल्मों की विविधता का सहज ही अनुमान हो जाता है. पुस्तक तैयार करने में तीन दिन का समय लगा. जब सभी प्रतिनिधियों ने पुस्तिका पर

अपनी सहमति दे दी तो श्री तेजावत ने उस पर कुछ अग्रणी व्यक्तियों के हस्ताक्षर अथवा अंगूठे के निशान ले लिए। पुस्तिका की सत्यता के लिए ऐसा करना आवश्यक था। उपर्युक्त 100 कलमों के आधार पर 21 सूत्री मांगपत्र तैयार किया गया। बैठक में गुप्तचर तो अनिवार्यतः उपस्थित होते ही थे. वे नित्यप्रति होने वाली कार्यवाही का विवरण अधिकारियों एवं जागीरदारों तक पहुंचा देते थे। वे नहीं चाहते थे कि उनके अत्याचारों की कहानी इतने प्रतिनिधियों के द्वारा समवेत स्वर में महाराणा साहब तक पहुचे. वे महाराणा फतहसिह जी से भयभीत भी रहते थे, क्योंकि वे बड़े कठोर शासक थे.

... ... विह्न परिलक्षित हो रहे

आन्दोलन को खंडित करने के प्रयास :

अधिकारी एवं जागीरदार वर्ग ने "एकी" आन्दोलन को दबाने और जनता में फूट डालने के बीज बोने की भरसक चेष्टा की किन्तु अब वे सब श्री तेजावत के नेतृत्व में दृढ़तापूर्वक संगठित हो गए थे, अतः आन्दोलन के विघटन की कोई सम्भावना नहीं रह गई थी. अत्याचारी अधिकारियों एवं जागीरदारों ने अपने कारनामों पर पर्दा डालने का बहुत प्रयत्न कि ... में कुछ सच्चे एवं न्यायप्रिय अधिकारी थे, ... थे और गुप्त रूप से वे श्री तेजावत को उत्साहित भी करते रहते थे. साथ में वे अपनी ओर से सलाह एवं सहायता भी देते रहते थे, जो राज्यहित एवं जनहित की दृष्टि से अनुकूल होती थी. इन न्यायप्रिय शक्तियों की दृष्टि में महाराणा की कोई गलती नहीं थी. महाराणा को जब ऐसे अत्याचारों की रिपोर्ट मिलती थी तो वे सम्बन्धित व्यक्तियों को प्रताड़ित भी करते थे. श्री तेजावत ने स्वयं अपनी आंखों से देखा और भोगा था. वे अत्याचारों की विभीषिका से पूरी तरह परिचित हो गए थे. उनका मस्तिष्क अहर्निश दीन-हीन जनता को उत्पीड़न से मुक्त करने के उपाय सोचता रहता था.

वे अपने अनुयायियों को पूरी तरह संगठित रहने का उद्बोधन देते रहते थे. उन्होंने उनको इतना मजबूत कर दिया था कि किसी भी तरह उनकी एकता खंडित न हो. वे एकता भंग करने वाले तत्वों से उनको सतर्क करते रहते थे. वे बार-बार जनता को यह कहते थे कि यदि एक बार उनकी एकता खंडित हो गई, तो उनके ऊपर नृशंस अत्याचारों का चक्र तेजी से घूमने लगेगा, अतः उन्हें पूर्ण एकता के सूत्र में बंधकर संघर्षरत हो जाना चाहिए. वे महसूस करते थे कि देश को क्रान्ति की सख्त आवश्यकता है। उनके ज्वलन्त शब्द प्रतिनिधियों के हृदय में अदम्य साहस का संचार करते थे. वे

भी अपनी बात मुक्त रूप से कहने लगे थे. विरोधी खेमे में निराशा का संचार होता जा रहा था. वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए थे. निस्संदेह वे महाराणा साहब को झूठी बातें कह-कह कर गुमराह करने का निरन्तर प्रयत्न करते रहते थे. उन्होंने महाराणा को संध्या को भ्रमण के लिए न जाने की सलाह दी. उनका कहना था कि बदमाशों द्वारा भ्रमित किये गये लोग उनके साथ न जाने क्या दुर्व्यवहार करें. अतः महाराणा ने भ्रमण का कार्यक्रम भी स्थगित कर दिया था.

इधर 8–10 हजार जनता ने महाराणा साहब द्वारा सुनवाई होने तक बड़ी पाल से नहीं डिगने का संकल्प कर लिया था. जिन लोगों के पास भोजनादि के लिए पैसा नहीं रहा, वे भी येन केन प्रकारेण उदर पूर्ति करते हुए टिके रहे. श्री तेजावत ने उनको यह कह कर उनके साहस को बढा दिया कि उन्हें जो कुछ भी सरलता से खाने को मिले, वह खा लेना चाहिए. यदि राज्य उन्हें मारने के लिए भी कटिबद्ध हो जावे तो वे हंसते-हंसते मर जायेंगे, किन्तु जब तक वे अपनी बात स्वयं महाराणा साहब को व्यक्तिशः नहीं कह देंगे, तब तक वे किसी भी स्थिति मे वहां से नहीं हटेंगे.

ज्ञापन-प्रस्तुति में अवरोध :

भ्रष्ट अधिकारियों तथा जागीरदारों ने यह निश्चय कर लिया था कि "मेवाड़-पुकार" पुस्तिका एवं ज्ञापन किसी भी तरह महाराणा के हाथों में नही पहुंचना चाहिये, क्योंकि यदि उक्त पुस्तिका महाराणा साहब के पास पहुंच गई तो वे निश्चय ही भ्रष्ट अधिकारियों को दंडित करेंगे. पुस्तिका में भ्रष्ट अधिकारियों एवं अन्य व्यक्तियों के व्यक्तिशः नाम दिये गये थे.

चूंकि बड़ी पाल पर पूरी पुस्तक का पारायण प्रकट रूप से किया गया था, अतः उसकी रिपोर्ट भी गुप्तचरों द्वारा नित्य उनको मिल जाती थी.

इन लोगों ने आंदोलन के अग्रणी लोगों को फोड़ने का निश्चय किया. इन्होंने कहा कि इस कार्य के लिए पुलिस विभाग के हाकिम श्री अमरसिंह राणावत की सहायता मांगी जाए. एक दिन जब श्री तेजावत अपने 25–30 साथियों के साथ अपने ठहरने के स्थान पर जा रहे थे तो उन्हें मार्ग में श्री राणावत मिल गये. श्री तेजावत का हाथ पकड़ कर उन्हें महलों की ओर ले गये और उन्हें धीरे-धीरे समझाने लगे कि वे झाड़ोल के महाजन हैं और इस नाते उनके समधी होते है, वे उन्हें उनकी इच्छानुसार सन्तुष्ट कर देंगे. श्री तेजावत ने उनसे कहा कि उन्हें व्यक्तिगत रूप से सन्तुष्ट करने का तो कोई प्रश्न ही नही है, उन्हें मेवाड़ की दुखी जनता को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिए. चूंकि श्री तेजावत के साथ श्री गेन्दाजी ब्राह्मण एवं अन्य पंच थे,

उन्होंने पूरी बात नहीं की और वे उनसे उनकी हवेली पर रात्रि में अवश्य मिलने को कह कर चले गये.

इस घटना का पूरा विवरण श्री तेजावत ने बड़ी पाल पर सभी प्रतिनिधियों को दे दिया. सबने एक स्वर में यह अभिमत प्रकट किया कि वहां जाकर यह अवश्य देखना चाहिए कि उनकी इच्छा क्या है. श्री तेजावत एवं उनके साथी श्री गेन्दाजी ब्राह्मण रात्रि के आठ बजे उनकी हवेली पर गए, पर श्री राणावत राजमहल गये हुये थे, इसलिए उनसे मिलना नहीं हो सका. श्री राणावत अपनी हवेली पर लौटे और उनको बताया गया कि श्री तेजावत आये थे तो उन्होंने उसी समय बागौर की हवेली में ठहरे जाट गुजरों में से कुछ अगुआ लोगों को बुलाया और उनको कुछ धन राशि देकर आंदोलन में फूट डालने के लिए प्रेरित किया.

किंतु क्या इस तरह के षड्यन्त्र सफल होने वाले थे? श्री तेजावत ने अपने सहस्रों अनुयाइयों को इस प्रकार दृढ़ संगठन में बांध दिया था कि किसी के भी फिसलने की रंचमात्र भी आशंका नहीं थी. उन्होंने दुर्बल चरित्र वालों को पहले ही आगाह कर दिया था कि यदि वे सामन्ती दमन का सामना करने में असमर्थ हों तो उन्हे पहले ही आंदोलन से हट जाना चाहिए. यह उस स्थिति की अपेक्षा कहीं बेहतर है कि वे बाद में पीछे हटकर संगठन को पंगु बनायें अतः अब विरोधियों की कोई चाल सफल नहीं होने वाली थी, बल्कि वह उन्हीं के विरुद्ध जाने वाली थी.

महाराणा की उदारता :

आंदोलनकर्ता तो केवल इतना चाहते थे कि "मेवाड़-पुकार" पुस्तिका एवं उस पर आधारित 21 सूत्री ज्ञापन महाराणा को दे दिया जाय. अन्त में महाराणा को उनके आदमियों के द्वारा जनता की इस इच्छा की जानकारी हुई. महाराणा ने श्री तेजावत एवं उनके कुछ साथियों को राजमहल में बुला भेजा जनता के प्रतिनिधि वहां गए और उन्होंने उपर्युक्त पुस्तिका एवं ज्ञापन महाराणा को दिये. श्री तेजावत ने महाराणा को निवेदन किया कि अनुचित लगान, लाग-बाग एवं बेगार से सम्बन्धित 21 मांगें स्वीकृत की जानी चाहिए. महाराणा ने इनमें से 18 मांगें तो तत्काल स्वीकार कर ली, किंतु तीन मांगें अस्वीकृत कर दी. ये तीन मांगें वन-सम्पदा, बैठ-बेगार एवं सुअरों से सम्बन्धित थी. ये तीन मांगें जगदीश के मंदिर की सीढ़ियों पर खड़े रहकर श्री तेजावत ने घोषणा की कि चूंकि शेष मांगें काफी महत्वपूर्ण हैं अतः जनता ने तय किया है कि शेष मांगें जनता अपने अधिकार से स्वयं स्वीकार करती है. दूसरे शब्दों में जनता ने निर्णय लिया कि इन मांगों से सम्बन्धित राज्यादेशों का जनता पालन नहीं करेगी. इस प्रकार जनता की अधिकांश मांगें मान ली गई थी,

किंतु कुछ महत्वपूर्ण मांगों पर निर्णय नहीं होने से राज्य, जागीरदार और जनता के बीच असन्तोष के बिन्दु शेष रह गए. इन अस्वीकृत मांगों की प्रकृति ऐसी थी कि उन्हें लेकर जनता और शासन के बीच नित्य विवाद उत्पन्न होते रहने की आशंका थी. विवाद ही नहीं राज्यादेशों का परिपालन न होने से कभी संघर्ष की भूमिका खड़ी हो सकती थी. किंतु फिर भी इस बात का सन्तोष था कि महाराणा ने अधिकांश मांगें मान कर समझौते का मार्ग प्रशस्त किया.

साहस, स्वाभिमान एवं चेतना की अनुभूति :

अब विभिन्न गांवों के किसान अपने अधिकारों के लिए किये गये संघर्ष में विजयी होकर अपने-अपने गांवों को लौटने लगे. वे साहस, स्वाभिमान एवं जागृति की अनुभूति से मंडित थे तथा उत्साह एवं उत्फुल्लता के भाव उनके सहज संबल थे. दमन एवं उत्पीड़न का सामना करने की अद्भुत शक्ति का उनमें प्रादुर्भाव हुआ था. निश्चय ही सदियों से सोई हुई तमसावृत जनता के लिये यह एक बड़ी उपलब्धि थी, जिसका मूल्यांकन जन-जागृति के इतिहास में भावनात्मक आरोहण की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण था.

रियासतों के सामन्ती परिवेश के दीर्घ अन्तराल में जनता रूढ़िग्रस्तता और शोषण के पंकिल वातावरण की अभ्यस्त हो गई थी. बिजोलिया के किसान आन्दोलन और मेवाड़ के भील-आंदोलन ने जन चेतना और अन्तस पर छाये कोहरे को छांटने में बड़ा योगदान दिया. मुख्यतः आदिवासी जनता तो गरीबी और पिछड़ेपन में सबसे आगे थी. उसे झकझोर कर अपनी गरीबी, पिछड़ेपन और दासता का अहसास कराना अत्यन्त कठिन था. फिर मेवाड़ और आसपास की कई रियासतों में बिखरी हुई भील जाति तक एक जागृति का संदेश पहुंचाना किसी एक व्यक्ति के लिए संभव नहीं था. श्री तेजावत ने अपने अप्रतिम नेतृत्व से वह कार्य कर दिखाया, जो अभी तक किसी व्यक्ति ने नहीं किया था.

अभी तक श्री तेजावत के इस महत् योगदान का मूल्यांकन नहीं हो पाया है. उनके कार्य का तर्कसंगत वस्तुनिष्ठ विश्लेषण ही उनकी भूमिका एवं संदर्भों को उभार सकता है, जो दुर्भाग्य से अभी तक नहीं हो पाया है.

श्री तेजावत के लिए अब उदयपुर में करने को विशेष कुछ नहीं रह गया था. "एकी आंदोलन" के लक्ष्य को लेकर वे यहां आये थे, जिसमें वे बहुत अंशों तक सफल रहे. यह उनके लिए कुछ कम संतोषजनक बात नहीं थी. इस जन-आंदोलन को वे बहुत कुशलतापूर्वक अन्तिम परिणति तक ले गए. उनके भावी जीवन में जो व्यापक संघर्ष अभी आने शेष थे, उनके लिए यह "एकी आन्दोलन" एक अच्छा प्रशिक्षण मंच सिद्ध हुआ.

पंचम अध्याय

श्री तेजावत एक परिव्राजक के रूप में

श्री तेजावत ने उदयपुर छोड़ दिया और चल पड़े अपने चिरसंगी आदिवासी क्षेत्र की ओर, जो उन्हें मौन निमन्त्रण दे रहा था. आदिवासी जन-जीवन को समुन्नत करने की कल्पनाएं उनके मस्तिष्क और हृदय में वर्षों से घुमड़ रही थी. उनका दुख-दैन्य उनके हृदय को बाल्यकाल से ही मथ रहा था. श्री तेजावत की क्षमता और शक्ति का कण-कण आदिवासियों की सेवा के लिए समर्पित था. वे चले अपने विशाल परिवार की ओर, जिसके लिए वे अपने जीवन के श्रेष्ठ बसन्त अर्पित कर चुके थे. अपनी पत्नी, बच्चे एवं परिवार का आकर्षण उन्हें नहीं बुला रहा था, उन्हें बुला रही थी. मानवता की वह पुकार जो उनके हृदय में गूंजकर दिग्दिगन्त में व्याप्त हो गई थी. वह इसे कैसे उपेक्षित कर सकते थे. जैसे गाय अपने बछड़े की ओर हुमस कर दौड़ती है, वैसे ही श्री तेजावत अपने आदिवासियों के निश्छल स्नेह के चुम्बक से खिंचे हुए जा रहे थे.

श्री तेजावत नाई, उन्दरी, काया आदि गांवों में होते हुए झाड़ोल की ओर अग्रसर हो रहे थे. उदयपुर से ही सैकड़ों भील उनके साथ हो गए थे और यह संख्या

राह में बढ़ती जा रही थी. जब वे झाड़ोल पहुंचे तो आदिवासियों की संख्या दस हजार तक हो गई.

अफवाह का निराकरण :

इधर उदयपुर में विरोधी तत्वों ने यह अफवाह फैला दी कि श्री तेजावत झाड़ोल लूटना चाहते हैं. पुलिस हाकिम श्री अमरसिंह राणावत को आवश्यक पुलिस फोर्स के साथ गांव की ओर सुरक्षार्थ भेजा गया. श्री राणावत ने श्री तेजावत को बुलाने के लिए संदेश भेजा, किन्तु आदिवासियों ने उनको जाने की अनुमति नही दी वे किसी भी प्रकार का खतरा उठाना नहीं चाहते थे. श्री तेजावत ने वापिस संदेश भेजा कि उनके पास कोई शस्त्र नही हो तो वे मिल सकते हैं. श्री राणावत की तलाशी ली गई. अब आदिवासियों को इस बात का विश्वास हो गया कि उनके पास कोई शस्त्र नही है तो श्री तेजावत श्री राणावत से मिले. उन्होने श्री राणावत से कहा कि यह अफवाह निर्मूल है. वे लुटेरे नहीं हैं जो झाड़ोल को लूटने का काम करेंगे. उनका काम तो गरीब आदिवासियों पर हो रहे अन्याय एवं अत्याचार की ओर शासन का ध्यान आकर्षित करना है, उनके असन्तोष को अभिव्यक्ति देकर उन्हे राहत पहुंचाना है. श्री राणावत उनके उत्तर से प्रसन्न हुए. उन्होंने जागीरदार ओर अन्य लोगों को आश्वस्त किया और उदयपुर लौट गए.

भ्रमणशील चक्र का आरम्भ :

अब श्री तेजावत का निरन्तर भ्रमणशील चक्र आरम्भ हो गया. वे एक स्थान के होकर नही रह गए. आज यहां तो कल वहां, उनका कोई निश्चित स्थान नहीं रह गया. कोई नहीं जानता था कि वे कहां हैं. केवल भील ही जानते थे कि वे कहां हैं. और उनकी गतिविधि क्या है.

वास्तव में तेजावत जी का यह भ्रमण तथ्यान्वेषण के लिए था, साथ ही यह समय---निरपेक्ष भ्रमण भी था. वे आदिवासियों के घर-घर जाकर उनकी वास्तविक स्थिति की जानकारी चाहते थे. इसके लिए उन्हें किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं थी. साथ ही उनका यह कार्य काल-निरपेक्ष भी था. कोई नहीं जानता था कि यह भ्रमण कब समाप्त होगा. कदाचित् स्वयं तेजावत जी भी यह नहीं जानते थे और वास्तव में घटनाक्रम इस तरह का होता गया कि वे वर्षों तक एक परिव्राजक सन्यासी की भांति घूमते रहे. कहीं आदि-अन्त नही.

जन-जीवन के देवता :

किन्तु इस यात्रा ने उनको आदिवासियों के हृदय-सिंहासन पर अभिषिक्त कर

दया. अब वे आदिवासियों के अघोषित बादशाह, देवता सभी कुछ हो गए थे वे लाखों व्यक्तियों के मन-मन्दिर में आसीन हो गए. तेजावत जी आदिवासियों की भावनाओं, उच्छ्वासों, पीड़ाओं और खुशियों के साथ इस प्रकार एकरस हो गए कि उनका भिन्न अस्तित्व ही नहीं रह गया. आदिवासियों के दुःख-दर्द की धड़कन उनके हृदय का स्पन्दन बन गई. इस तादात्म्य की गहराई का वही अनुमान लगा सकता है, जिसकी संवेदना का स्तर परकीय पीड़ा से उसी प्रकार झंकृत होता हो, जिस प्रकार तेजावत जी का होता था.

हत्या का प्रयास :

श्री तेजावत ने सैंकड़ों भील साथियों के साथ भाड़ोल से प्रस्थान किया. वे खाकड़ गांव में पहुंचे. कुछ जागीरदार, जो उनकी गतिविधि से आशंकित हो गए थे, उनकी हत्या का षड्यंत्र रचने लगे. खाकड़ गांव में गोली मार कर तेजावत जी की हत्या का प्रयत्न किया गया, किंतु ठीक समय पर भीलों ने आक्रमणकारियों को देख लिया और हल्ला कर दिया. तुरंत ही चारों ओर से बड़ी संख्या में भील एकत्रित हो गए. आक्रमणकारी वहां से पलायन कर गए. इस घटना के पश्चात भील सतर्क हो गए. अब वे तेजावतजी को कहीं अकेला नहीं छोड़ते थे.

तेजावतजी की सुरक्षा के उपाय :

श्री तेजावत अपने कारवां के साथ आगे बढ़ रहे. वे अपने गांव कोल्यारी पहुंचे. उन्होंने अपने मोहल्ले के चौक में पड़ाव डाला और लोगों से बातचीत करने लगे. उसी दिन उन के एक सजातीय बन्धु की कन्या का पाणिग्रहण संस्कार हो रहा था. तेजावत जी को भोज के लिए आमंत्रित किया गया, किन्तु उनके भील अंगरक्षकों ने उनको भोज में सम्मिलित नहीं होने दिया. खाकड़ की घटना के पश्चात अब वे किसी पर भी विश्वास करने को तैयार नहीं थे. उनको काफी समझाया बुझाया गया, पर वे नहीं मानें. अन्त में दो भीलों को पहले भेज कर भोजन कराया गया. वे जब आश्वस्त हो गए कि भोजन में विष आदि की मिलावट नहीं है तो उन्होंने तेजावत जी को भोजन के लिए जाने दिया. इस घटना से प्रतीत होता है कि आदिवासी उनकी सुरक्षा का कितना ध्यान रखते थे तथा उनके प्रति कितनी निष्ठा एवं आत्मीयता रखते थे.

षष्टम अध्याय

आन्दोलन का अन्य रियासतों में प्रचार एवं दमन-चक्र

अब जन-जागरण एवं आन्दोलन का प्रभाव दूर-दूर तक फैल गया था. मेवाड़ के अतिरिक्त ईडर, सिरोही, पालनपुर, दांता, विजयनगर, प्रतापगढ़ आदि कई रियासतें आन्दोलन से प्रभावित हो गई थीं. इन रियासतों में भील-गरासियों की बड़ी संख्या निवास करती है. भील एक रियासत से दूसरी रियासत में आते जाते रहते है. इन सभी रियासतों मे अनुचित भूमि कर और लाग-बागों के विरुद्ध जनता उठ खड़ी हुई. सभी रियासतों मे दमन-चक्र चलने लगा. अब तेजावत जी के नेतृत्व की मांग कई रियासतों में होने लगी. इतने व्यापक क्षेत्र के लिए उनकी अनिवार्यता स्वयं सिद्ध थी. आन्दोलन को गति देने वाला उनके अतिरिक्त और कोई नेता नहीं था, जो समर्पित भाव से अपना सब कुछ दांव पर लगा देता.

तेजावत जी इन रियासतों के गांव-गांव मे भ्रमण करने लगे और वहां के आदिवासियों को उत्पीड़न एवं शोषण के विरुद्ध खड़ा होने के लिए प्रेरित करते. "एकी

आन्दोलन" का प्रभाव अब मेवाड़ राज्य की सीमाओं को लांघ कर अन्य रियासतों में दूर-दूर तक फैल गया था. गांव-गांव में जन-सभाएं आयोजित की जाती थीं, जिन्हें श्री तेजावत सम्बोधित करते थे. छोटी-छोटी रियासतों के गांव जो अब तक चेतना शून्य तंद्रिल अवस्था में पड़े हुए थे, सहसा जन-जागरण की लहर से स्पन्दित हो उठे. उनको अपनी असहाय स्थिति का अहसास हुआ और वे रियासती प्रशासन के विरुद्ध उठ खड़े हुए. श्री तेजावत जो अब तक मेवाड़ रियासत के लिए सिरदर्द बने हुए थे, अब अन्य रियासतों के शासकों की आँखों में भी खटकने लगे. तेजावत जी ने ईडर, पालनपुर, सिरोही, दांता, विजयनगर आदि रियासतों में विस्तृत पद यात्राएं कीं और वहां की आदिवासी जनता को उत्प्रेरित कर उसे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया. इन रियासतों का जन-जीवन अभाव एवं उत्पीड़न के फलस्वरूप निम्नतम स्तर पर था और उसके उद्धार की संभावनाएं अत्यन्त क्षीण थी. शोषण एवं उत्पीड़न अपने शिखर पर था और आदिवासी जनता निरीह पशु के समान उसे सहन करने के लिए बाध्य थी, कहीं कोई आशा एवं प्रकाश की किरण दिखाई नहीं देती थी. ऐसे समय उनके मध्य देवदूत के समान श्री तेजावत का अवतरण हुआ. डूबते को तिनके का सहारा मिला और वहां के आदिवासी शीघ्र ही तेजावत जी द्वारा चलाए जा रहे आन्दोलन के सक्रिय सहयोगी बन गए. किन्तु इन रियासतों के प्रशासन की गिद्ध-दृष्टि तेजावत जी पर केन्द्रित हो गई थी. वे इस नई समस्या का सामना करने के लिए कृत-संकल्प थे. इन रियासतों को अपने अस्तित्व के लिए यह आन्दोलन एक बड़ी चुनौती लग रहा था.

रियासती दमन :

विभिन्न रियासती प्रशासनों ने मेवाड़ रियासत को अलग-अलग पत्र लिख कर आग्रह किया कि तेजावत जी को अविलम्ब वापिस बुलाया जाय और उनको उनकी शान्त जनता को विद्रोह के लिए बहकाने से रोका जाय मेवाड़ रियासत ने भी उनको पकड़ने के वारन्ट जारी कर दिये थे. कुछ अन्य रियासतों ने भी ऐसे आदेश निकाल दिये थे. कहा जाता है कि कुछ रियासतों ने उनको जीवित या मृत पकड़ कर लाने के लिए भी आदेश प्रसारित कर दिये थे. साथ ही इसके लिए पुरस्कार भी घोषित किये गए थे. यह भी कहा जाता है कि किसी रियासत ने तेजावत जी को फांसी की सजा देने की आज्ञा भी प्रसारित कर दी थी. जो भी हो, ये रियासतें तेजावत जी को मुक्त रूप से अपनी रियासतों में विचरण करने देना नहीं चाहती थीं. चारों ओर इनको पकड़ने के लिए प्रयास चल रहे थे, किन्तु यह कार्य इतना सरल नहीं था. तेजावत जी सघन पर्वतीय क्षेत्र के दुर्गम-स्थलों में सैकड़ों आदिवासियों से घिरे हुए रहते थे. ये आदिवासी उनकी सुरक्षा के लिए अपना सब कुछ न्योछावर करने को तत्पर रहते थे.

गलत व्यक्तियों की हत्या :

पुरस्कार के लोभ में एक दो गलत व्यक्ति भी मौत के घाट उतार दिये गए थे. ऐसा कहा जाता है कि प्रारम्भ मे किसी ज्ञानजी राजपूत का सिर काट कर प्रचार किया गया कि मोतीलाल तेजावत मारा गया है. तत्पश्चात् आदिवासियों ने इस खबर को गलत बताया और कहा कि मोतीलाल जीवित हैं इसके पश्चात् फिर मोतीलाल नामक व्यक्ति को गोली से मारकर घोषित किया गया कि मोतीलाल मारा गया है, किन्तु ये घोषणाएं निमूंल सिद्ध हुईं.

तेजावत जी का दिशा-निर्देश :

विद्रोह की यह आग कई रियासतों में दूर-दूर तक फैलती जा रही थी और जन-जागरण की लहर विद्युत गति से इन रियासतों की जनता को अपने अंचल में समेट रही थी. सत्ताधारी चौक उठे. विभिन्न रियासतों के शासकों ने मिलकर इस जन-आन्दोलन को कुचलने का निश्चय किया. तेजावत जी ने सभी रियासतों के आदिवासियों को पहला मन्त्र यह दिया कि उन्हें हर स्थिति में संगठित और संयुक्त होकर रहना है आदिवासियों ने एकता की शपथ तो ली ही, साथ मे यह भी निश्चय किया कि वे अलग-अलग अभियोगों के बारे मे अलग-अलग समझौता नहीं करेंगे. उनकी सभी मांगों पर सर्वमान्य एक ही समझौता होना चाहिए. वे यह भी चाहते थे कि जो भी निर्णय हो, उस पर तेजावत जी की स्वीकृति की मुहर लगनी चाहिए. मेवाड़ के अतिरिक्त अन्य रियासतों के आदिवासियों ने भी लगान और लाग-बेगार देना बन्द कर दिया. सदियों के शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध जब भूमि-पुत्र उठ खड़े हुए तो इन रियासतों के शासकों के लिए विराट जन आन्दोलन का सामना करना कठिन हो गया.

नृशंस हत्याकांड :

इस बीच समझौते के भी छुटपुट प्रयत्न चल रहे थे. विजय नगर रियासत के पालछितरिया गांव में इन रियासतों के सरकारी प्रतिनिधियों और आदिवासी जनता के मध्य 7 मार्च 1922 को लगान एवं बेगार आदि बिन्दुओं पर बातचीत चल रही थी. सभा सर्वथा शान्त थी. मेवाड़ की भील कोर रेजीमेन्ट वहां उपस्थित थी. अन्य रियासतों के भी पुलिस के सिपाही वहां थे. यह सम्भावना थी कि समझौता वार्ता किसी निर्णय पर पहुंच जायेगी. किन्तु "भील कोर रेजीमेन्ट" ने बिना किसी उत्तेजक कारण के मशीनगनों से आक्रमण कर दिया और शान्त, निरीह आदिवासियों को गोलियों से भून दिया गया. कतिपय प्रकाशित रिपोर्टों के अनुसार एक साथ एक ही समय मे 1200 निरस्त्र व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया गया और उनकी

लाशें कुओं में डाल दी गई. तेजावत जी भी पैर में गोली एवं छर लगने से घायल हो गए. इसके पश्चात् तेजावत जी सन् 1929 तक सात वर्ष तक निरन्तर भूमिगत रहे. यह एक दूसरा जलियांवाला हत्याकांड था, किन्तु रियासतों के दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र में घटित होने से बाहरी संसार को इसकी पूरी जानकारी न मिल सकी.

महात्मा गांधी का अनुरोध :

भील आन्दोलन एवं उपर्युक्त हत्याकांड की ओर महात्मा गांधी का भी ध्यान आकर्षित हुआ था. उन्होंने अपने निकट साथी स्वर्गीय मणिलाल कोठारी के द्वारा राजपूताना के अंग्रेज अधिकारी और रियासती प्रशासन से सैनिक बल का प्रयोग न करने और रक्तपात न करने का अनुरोध किया था.

अज्ञातवास के 7 वर्ष :

इन दिनों सिरोही आन्दोलन अपने शिखर पर था. स्थान-स्थान पर भील-गरासियों की सभाएं हो रही थी. वे अन्यायमूलक रियासती कानूनों और आज्ञाओं की स्पष्ट अवहेलना कर रहे थे. श्री तेजावत के नेतृत्व में उनकी एकता अभेद्य हो गई थी. रियासती प्रशासन समझौते का प्रयास अवश्य कर रहा था. उस समय पंडित मदनमोहन मालवीय के सुपुत्र पं रमाकान्त मालवीय राज्य के दीवान थे. उन्होंने व्यक्तिशः समझौता कराने में रुचि ली. वे श्री तेजावत से भेंट करना चाहते थे आदिवासी इस शर्त पर तेजावत जी से उनकी भेंट कराने के लिए तैयार हुए कि उन्हें तेजावत जी के पास पूर्णतः निःशस्त्र होकर बिना किसी सुरक्षात्मक व्यवस्था के जाना होगा. उनको यह भी शपथ लेनी पड़ी कि वे किसी भी प्रकार विश्वास-भंग नहीं करेंगे. ये शर्तें मान ली गई. श्री मालवीय को तेजावत जी के गुप्त निवास-स्थान पर नंगी तलवारों की छाया से ले जाया गया. इस अवसर पर तेजावत जी ने स्वर्गीय विजयसिंह पथिक को परामर्श और मार्गदर्शन के लिए बुला लिया था. पथिक जी को बुलाने में सिरोही नरेश की सहमति थी. आपस में सौहार्द्रपूर्वक विचार-विमर्श हुआ. बातचीत के फलस्वरूप दोनों पक्षों को मान्य एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार यह निर्णय लिया गया कि एक नियत तिथि को भील-गरासिये एकत्रित होकर व्यवहारिक शर्तें तय करें और उन्हें पूरी कराने के लिए अपनी-अपनी रियासतें सहयोग करें. इस अवसर पर सिरोही के दीवान श्री रमाकान्त मालवीय ने महात्मा गांधी को यह तार दिया था, "पथिक जी का दल उपद्रवग्रस्त क्षेत्रों में शानदार काम कर रहा है. रक्तपात रोकने का श्रेय बहुत कुछ उनको है."

इस बीच महात्मा गांधी की ओर से श्री मणिलाल कोठारी भी सिरोही आये.

उन्होंने काफी परिश्रम करके भीलों, तेजावत जी तथा मिस्टर हालेण्ड, ए. जी. जी. को समझौते के लिए तैयार कर लिया. ए.जी.जी. ने बार-बार वचन दिये, किन्तु फिर मुकर गए. राज्य प्रशासन भी समझौते पर स्थिर नहीं रह सका.

इसके विपरीत सरकार ने आतंक एवं दमन का रुख ग्रहण कर लिया.

सिरोही का हत्याकांड एवं अग्निकांड :

स्थिति का लेखा-जोखा करने के लिए भील एवं गरासियों ने अपनी पंचायत की बैठक बुलाई, जिसमें मेवाड़ एवं ईडर आदि रियासतों के भील बड़ी संख्या में सम्मिलित हुए थे. बैठक में भील, गरासियों ने एक स्वर में यह निर्णय लिया कि वे न तो अनुचित लगान देंगे और न ही पुरानी बकाया का भुगतान करेंगे. वे अन्याय उत्पीड़न के सामने कभी नहीं झुकेंगे, चाहे इसके लिए उन्हें कितना ही बलिदान क्यों न करना पड़े, वे सत्य का मार्ग कभी नहीं छोड़ेंगे.

रियासती प्रशासन ने आदिवासियों को लगान एवं बकाया का भुगतान करने एवं "एकी" तोड़ने के लिए बाध्य किया और कहा कि यदि राज्यादेश का उल्लंघन जारी रहा तो सैनिक कार्यवाही की जायेगी, किन्तु आदिवासी किसी भी धमकी से विचलित होने वाले नहीं थे.

एकाएक पांच एवं छः मई 1922 को रियासत की सैनिक टुकड़ी ने क्रमशः सिरोही की रोहेड़ा तहसील के बालोलिया एवं भूला गांवों को घेर लिया और अंधाधुन्ध गोली चलाने के साथ दोनों गांव को आग भी लगा दी. गांव जल कर भस्म हो गए तथा अनेक आदिवासी हताहत हुए. जानमाल की भारी क्षति हुई. इस हत्याकांड एवं अग्निकांड में गरीब भीलों के घरबार, अनाज, पशु, घास आदि जलकर राख हो गए. वे दर-दर के भिखारी हो गए. थोड़े से किसानों ने कुछ अनाज सैनिक कार्यवाही की आशंका से पहाड़ों पर ले जाकर छिपा दिया था. उसी के आधार पर उन्होंने पांच-सात दिन किसी तरह निकाल दिये. इस सैनिक अभियान का नेतृत्व राजपूताना के ए. जी. जी. के सेक्रेटरी मेजर प्रिचर्ड ने किया था.

राजस्थान सेवा संघ द्वारा जांच :

इस हत्याकांड की सूचना राजस्थान सेवा संघ, अजमेर के कार्यालय में भील एवं गरासियों द्वारा दिनांक 1 मई 1922 को दी गई. सिरोही रियासत की भी एक विज्ञप्ति 10 मई 1922 के कुछ पत्रों में प्रकाशित हुई. स्थिति की भयानकता का अनुमान लगाते हुए तथा भील-गरासियों द्वारा कठिन समय में सहायता करने के अनुरोध पर ध्यान

देते हुए सेवा संघ ने इस-कांड की जांच करना अत्यन्त आवश्यक समझा. इस कार्य के लिए सेवा संघ ने "भविष्य" पत्रिका के संयुक्त सम्पादक श्री सत्य भक्त तथा श्री राम नारायण चौधरी, सेक्रेटरी, राजस्थान सेवा संघ को घटना के स्थानों पर जाने और सेवा संघ के निमित्त आवश्यक जांच करने हेतु नियुक्त किया. दोनों सज्जनों ने घटना स्थलों पर पहुंच कर विस्तृत जांच की. उन्होने 15 मई को बालोलिया में पंचों का बयान लिया. उन्होंने अत्यन्त व्यथा के स्वर में कहा कि "राज्य ने हमें नष्ट कर दिया है और हमारे परिवारों को कुछ दिन निर्वाह करने के साधनों से भी वंचित कर दिया है. हमें धमकी दी गई है कि "एकी" की धार्मिक शपथ न तोड़ने पर मार डाले जाएंगे. हमारा राज्य पर से विश्वास उठ गया है. हम पहाड़ियों में रहना ठीक समझते हैं, क्योंकि हमें डर है कि यदि हमने दुबारा मकान बनाये तो वे फिर जला दिये जाएंगे. बड़े साहब के प्रति हमारे दिल में रत्ती भर भी विश्वास नहीं रहा. उनकी ही आज्ञा से सरकारी सेना ने हमें नष्ट किया है. केवल परमात्मा ही हमारा रक्षक है." फिर 115 दूसरे व्यक्तियों की शहादतें ली गई, इन्होंने भी पंचों की बातों का समर्थन किया.

बालोलिया से संघ के प्रतिनिधि भूला गांव में आये. यहां उन्होंने पहले मुखियाओं और फिर 138 भीलों की शहादत ली. यहां भी सभी गवाहों ने मुखियाओं की बातों का समर्थन किया. मुखियाओं ने कहा कि उनके साथ जो व्यवहार किया गया है उसे देखते हुए उन्होने निश्चय किया है कि जब तक उनके साथ पूर्ण रूप से न्याय नहीं किया जायेगा, वे कोई कर नहीं देंगे. चाहे इसके लिए उनके अंतिम बालक की जान देनी पड़े. उन्हें राज्य को केवल एक फसल की मालगुजारी देनी थी, जिसके चुकाने का अभी समय नहीं आया था. उन्होंने दुख के साथ कहा कि सिरोही जैसे राज्य में रहना पाप है. संघ के प्रतिनिधियों ने सेवा संघ को अपनी रिपोर्ट दी, जो मुद्रित रूप मे उपलब्ध है. रिपोर्ट में दिल दहला देने वाले हत्याकांड एवं अग्निकाड पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है. सिरोही का यह नृशंस हत्याकाण्ड सारे देश के समाचार पत्रों में चर्चा का विषय बना.

क्षति का अनुमान :

जांच रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है कि गोलीकांड में हताहतों की वास्तविक संख्या विदित करना कठिन है, क्योंकि अन्य रियासतो के व्यक्ति बड़ी संख्या मे आये हुए थे और सभा में भाग ले रहे थे. गोलीकाड में जो अनेक व्यक्ति मारे गए या घायल हुए उनको वे उठाकर बीहड़ पर्वतीय वन खंड मे ले गये. दूसरी रियासतों के हताहतों के नाम-पतों का कुछ भी पता नहीं था, अतः वास्तविक स्थिति का अनुमान करना संभव नहीं था. जिन हताहतों का स्पष्ट पता लग सका उसके अनुसार रिपोर्ट में मृतकों की

संख्या 50 तथा घायलों की संख्या 150 थी. मेजर प्रिचर्ड, जिसने गोली काण्ड का नेतृत्व किया था, ने अधिकृत रूप से यह संख्या दी है. रिपोर्ट में इसे सही माना गया है.

इसके अतिरिक्त रिपोर्ट में अन्य क्षति का भी विवरण दिया गया है. रिपोर्ट के अनुसार भूला और बालोलिया गांवों में हत्याकांड एव अग्निकांड के फलस्वरूप 3 5 परिवार और 1800 व्यक्ति प्रभावित हुये, 640 मकान या तो जल गये या नष्ट हो गये, 7085 मन अनाज जल गया या लूट लिया गया, 600 गाड़ी घास जल गई, 108 पशु मारे गये या ले जाये गये. इसके अतिरिक्त जो अन्य सामान जल गया या लूटा गया उसका मूल्य दस हजार रुपये आंका गया.

रिपोर्ट में यह भी अंकित किया गया है कि शायद जान-माल की क्षति उपर्युक्त अनुमान से भी अधिक रही होगी, क्योंकि सैनिकों ने मृतकों को जला दिया या छिपाने का प्रयत्न किया. दो गांवो के व्यापक एवं बीहड़ पर्वतीय क्षेत्र के कारण भी हताहतों की संख्या का पता लगाना कठिन था.

जांचकर्ताओं ने राजस्थान की न्यायप्रिय जनता से पीड़ितों की अन्न, वस्त्र, धन, गृह निर्माण एवं कृषि उपकरणों के लिए उदारतापूर्वक सहायता करने की अपील की. पूर्णतः विनष्ट हुये इन गावो के आदिवासियों की स्थिति इतनी दयनीय हो गई कि न तो उनके पास पेट भरने को अन्न था, न तन ढकने को वस्त्र थे, सिवाय उनके जो उन के शरीर पर रह गये थे. सिर छिपाने के लिये कोई मकान या झौपड़ियां भी नहीं रही थीं राजस्थान सेवा संघ ने धन, वस्त्र एकत्रित कर पीड़ितो को अधिकाधिक सहायता पहुंचाई.

साहसिक बयान :

इस नृशंस हत्याकांड का एक साहसिक चित्र तब प्रस्तुत होता है जबकि सिरोही रियासत के दीवान, तहसीलदार एवं अंग्रेज अधिकारी 100–150 सैनिकों के साथ दिनांक 8 मई को नष्ट किये गये गांव में आये और ग्रामवासियों को संदेश भेजा कि वे पहाड़ियों से उतर कर नीचे आवें तथा उनसे मिलें. यदि वे नहीं आये तो उन्हें पहाड़ियों पर ही गोली से उड़ा दिया जायेगा. व्यर्थ के रक्तपात से बचने के लिये वे आये और दीवान से मिले. अंग्रेज अधिकारी ने उनको धमकी दी और कहा कि पहले ही उन्होंने 50 आदिवासियों को मार दिया है और 150 व्यक्तियों को घायल कर दिया है, यदि वे अब भी राह पर नहीं आयेंगे तो और अधिक आदमियों को समाप्त कर दिया जायेगा. दीवान ने आदिवासियों की शिकायत के बारे में पूछताछ की.

उन्होंने निर्भीकतापूर्वक बताया कि राज्य के अधिकारी उनको पूरी तरह लूट लेते हैं, परेशान करते हैं और लगान के रूप में बहुत अनाज ले जाते हैं. उन्हें झूठी चोरी के अपराधों में फंसा दिया जाता है, साथ ही घूंसखोरी करने के लिये कई प्रकार के अपराध लगाकर हथकड़ियां, बेड़ियां डाल दी जाती हैं. इसके अतिरिक्त उन्हें और भी अनेक प्रकार से सताया जाता है.

"एकी आन्दोलन" के धार्मिक एवं सामाजिक संदर्भ :

जब दीवान ने आदिवासियों को "एकी आन्दोलन" से स्वयं को अलग कर लेने के लिए बाध्य किया तो आदिवासियों ने अत्यन्त निडरतापूर्वक कहा कि वे ऐसा कभी नहीं करेंगे, क्योंकि "एकी" न केवल आर्थिक पक्ष को लेकर की गई है, किन्तु इसके धार्मिक एवं सामाजिक संदर्भ भी हैं. धार्मिक एवं सामाजिक बाध्यताओं के कारण "एकी" के अन्तर्गत उनका गठबन्धन सदा के लिये अडिग एवं अचल रहेगा. धार्मिक दृष्टि से "एकी" के अन्तर्गत संगठित रहने की प्रतिज्ञा उन्होंने भगवान एकलिंगजी तथा मां भवानी की साक्षी में की है. "एकी" तोड़ कर वे इन देवताओं का कोपभाजन नहीं होना चाहते. इसके अतिरिक्त "एकी" भंग कर देने पर उन्हें समाज से बहिष्कृत कर दिया जायेगा. शादी विवाह के मामलों में वे कठिन परिस्थिति में फंस जायेंगे. कोई भी व्यक्ति उनको न तो अपनी बेटी देगा और न ही उनकी बेटी लेगा. आदिवासियों के इस निर्भीक उत्तर से एक अंग्रेज ने उत्तेजित होकर कहा कि यदि वे "एकी" नहीं तोड़ेंगे तो उन्हें गोली मार दी जायेगी. उन्होंने धमकी देकर कहा कि भवानी की शपथ लेकर "एकी" तोड़ दो और गांव को लौट जाओ, अन्यथा उनको इसके परिणाम भोगने होंगे. इस धमकी का भीलों पर कोई प्रभाव नहीं हुआ. वे चट्टान की तरह अडिग रहे. उन्होंने मां भवानी को नमस्कार किया किन्तु एकी तोड़ने की बात स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दी. उन्होंने उचित लगान से अधिक देने में भी असमर्थता व्यक्त कर दी.

रियासत के दीवान द्वारा भीलों को यह पूछने पर कि वे सरकार के साथ हैं या गांधी जी के साथ, भीलों ने साहस के साथ कहा कि वे गांधी जी के साथ हैं.

भीलों ने यह भी स्पष्ट किया कि "एकी" में सम्मिलित होने से उनका काफी हित हुआ है. "एकी" के अन्तर्गत उन्होंने चोरी करना, मदिरापान करना एवं पशुओं का मांस खाना छोड़ दिया है.

उपर्युक्त संवाद से यह बात भली भांति स्पष्ट हो जाती है कि आदिवासी

"एकी" आन्दोलन के साथ पूर्णतया जुड़ गए थे. कोई भी शक्ति उनकी एकता को खंडित करने में असमर्थ थी.

बौद्धिक परिपक्वता का उदाहरण :

इस सन्दर्भ में यह सत्य भी उभर कर रूपायित हो उठता है कि किस प्रकार श्री तेजावत ने भीलों को एकता के वज्र-कठोर सांचे में ढाल दिया था. प्रायः आंदोलनों के इतिहास में ऐसी एकता के दर्शन नहीं होते. साथ ही यह बात भी तेजावत जी की विलक्षण बुद्धि चातुर्य का परिचय देती है कि उन्होंने "एकी आन्दोलन" को धार्मिक एवं सामाजिक स्वरूप देकर उसे अभेद्य एवं अछेद्य बना दिया. अब उनके लिए यह भी अनावश्यक हो गया कि वे अहर्निश भीलों को एकता बनाए रखने का उद्बोधन देते रहे. रियासत के सर्वोच्च प्रशासक दीवान के साथ इस प्रकार का निर्भीक एवं साहसिक वार्तालाप एक ओर भीलों के वीरोचित दर्प का परिचय देता है तो दूसरी ओर उनके संगठन की दृढ़ एकता का परिचायक है.

समाज सुधार की ओर :

गुप्तवास में रहते हुए तेजावत जी आदिवासियों को उनके ऊपर हो रहे अमानुषिक अत्याचारों से जूझने तथा संगठित रहने की प्रेरणा तो दे ही रहे थे, साथ ही वे उनमें व्याप्त अंधविश्वास एवं कुरीतियों के उन्मूलन का भी सतत प्रयास करते रहे. भीलों में मद्यपान एवं मांसाहार का काफी प्रचलन था. वे अनेक सामाजिक रूढ़ियों एवं कुरीतियों के भी शिकार थे. तेजावत जी ने बड़ी संख्या में भीलों को मदिरापान एवं मांसाहार से विरत किया. उन्हें शुद्ध, सात्विक जीवन अंगीकार करने की प्रेरणा दी. उन्होंने चोरी, हत्या जैसे अपराधों से दूर रहकर सत्याचरण पर बल दिया. तेजावत जी के सम्पर्क से अनेक आदिवासी पूर्णतः धार्मिक जीवन बिताने लगे. इस प्रकार तेजावत जी ने भील समाज के उत्थान के लिए एक श्रेष्ठ समाज-सुधारक का दायित्व निभाया.

तेजावत जी की खोज का काम :

सिरोही हत्याकांड के पश्चात् भी गुजरात की रियासतों में तेजावत जी की खोज चलती रही, किन्तु उनको पकड़ना सरल काम नहीं था. जिस प्रकार महाराणा प्रताप वर्षों भीलों के साथ बीहड़ पर्वतीय क्षेत्रों में विचरण करते रहे और कभी शत्रुओं के हाथ नहीं पड़े, उसी प्रकार तेजावत जी भी इतनी रियासतों के प्रयत्न के बावजूद कभी उनकी पकड़ में नहीं आये. एक प्रकार से भीलों को दूसरे प्रताप ही

मिल गए थे. कभी-कभी उनको एक ही रात्रि में हिंस्र पशुओं के बीच 12-12 स्थान बदलने पड़ते थे.

सिरोही हत्याकांड के दो-तीन वर्ष पश्चात् मेवाड़ रियासत को यह सूचना मिली कि वे सिरोही रियासत में छिपे हुए हैं. मेवाड़ रियासत की ओर से सिरोही रियासत को लिखित सदेश भेजा गया कि श्री तेजावत को गिरफ्तार कर मेवाड़ रियासत को सौंपा जाय. मेवाड़ रियासत ने तेजावत जी को पकड़वाने के लिए पांच हजार रुपये का इनाम भी घोषित कर रखा था सिरोही रियासत ने उत्तर दिया कि उनके यहां कोई मोतीलाल नहीं हैं, फिर भी मेवाड़ रियासत चाहें तो उसकी सेना सिरोही रियासत में आकर मोतीलाल को तलाश कर सकती है. इस पर मेवाड़ की भील कोर रजीमेन्ट को वहां भेजा गया. सेना लगभग छः मास तक सिरोही तथा अन्य राज्यों की सीमाओं में तेजावत जी को तलाश करती रही, किन्तु कुछ भी पता नहीं चला. फलस्वरूप उसे वापिस मेवाड़ लौटना पड़ा. इससे प्रतीत होता है कि तेजावत जी के ठहरने के स्थान कितने अगम्य और गुप्त हुआ करते थे तथा भील उनकी सुरक्षा की कितनी अचूक व्यवस्था करते थे. यह भील समाज की तेजावत जी के प्रति अटूट निष्ठा एवं भक्ति का परिचायक है. भील तेजावत जी को देवता स्वरूप "बावजी" कहकर सम्बोधित करते थे. हजारों भील तीर, तलवार एवं बन्दूकें लिए अहर्निश उनकी सुरक्षा के लिए नियत रहते थे.

भील आन्दोलन के व्यापक सन्दर्भ

इस बीच तेजावत जी की वीर गाथा महात्मा गांधी तक पहुंच गई थी; वे समय-समय पर व्यक्तिशः "भील आन्दोलन" की गतिविधि की जानकारी लेते रहते थे.

इस आन्दोलन की चर्चा बम्बई एवं देश के अन्य पत्रों में होने लगी थी बंगाल के क्रान्तिकारियों ने तो कुछ रियासतो द्वारा घोषित फांसी एवं देखते ही गोली मारने की सजाएं निरस्त करने के कई प्रस्ताव स्वीकार किये थे.

कहा जाता है कि भील आन्दोलन की सूचना वायसराय तक भी पहुंच गई थी तथा वे "भील-आन्दोलन" की कार्यवाही को स्वयं व्यक्तिशः देखते थे. उन्होंने अपने सचिव पोटिंगम को इस कार्य का दायित्व सौंपा था.

सप्तम अध्याय

आन्दोलन की परिणति एवं मोड़

तेजावत जी की खोज का क्रम दीर्घकाल तक चलता रहा, किन्तु सारे प्रयास विफल हो गए. तेजावत जी परिव्राजक के वेश में दाढ़ी जटा धारण किये मेवाड़ एवं गुजरात की विभिन्न रियासतों के विस्तृत सघन पर्वतीय भूभाग में निरन्तर विचरण करते रहे और आदिवासियों को एक सूत्र में आबद्ध करते रहे, साथ ही उनको अभ्युदय के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित भी करते रहे.

तेजावत जी गांधी जी के सत्य एवं अहिंसा के मार्ग में अटूट आस्था रखते थे तथा अपने आन्दोलन को भी दृढ़ता के साथ इसी मार्ग पर आगे बढ़ाने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध थे. इसीलिए रियासतों द्वारा रक्तपात की राह पकड़ने के बावजूद उन्होंने कभी हिंसा का सहारा नहीं लिया, न इस दृष्टि से कभी भी उन्होंने चिन्तन किया. भील आन्दोलन अहिंसात्मक रहने के कारण ही गरिमा एवं प्रतिष्ठा से गौरवान्वित हुआ.

भील आन्दोलन की गतिविधि की जानकारी पूज्य गांधी जी को श्री मणिलाल कोठारी के माध्यम से मिलती रहती थी. गांधी जी की इच्छा थी कि रियासती सरकारों और तेजावत जी के बीच कोई सर्वमान्य समझौता हो जाय. वे यह नहीं चाहते थे कि

भील आन्दोलन दीर्घकाल तक अनिर्णीत चलता रहे. वैसे भी तेजावत जी को गुप्तवास में रहते सात वर्ष से अधिक हो गए थे. यह एक व्यक्ति की शक्ति एवं क्षमता की पराकाष्ठा थी. आखिर कब तक श्री तेजावत अपनी शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकताओं की बलि देकर एक परिव्राजक का जीवन व्यतीत करते रहते? गांधी जी ने सभी दृष्टियों से समस्या का मूल्यांकन किया और वे इसी निष्कर्ष पर पहुंचे कि तेजावत जी को स्वेच्छा से पुलिस को आत्म-समर्पण कर देना चाहिए, ताकि मेवाड़ रियासत के साथ कोई निर्णायक संवाद स्थापित हो सके. उन्होंने स्वर्गीय मणिलाल कोठारी के द्वारा यह संदेश तेजावत जी को भेजा.

आदिवासियों ने तेजावत जी द्वारा स्वेच्छापूर्वक आत्म-समर्पण की बात को पसन्द नहीं किया. इसे वे अपना अपमान मानते थे. उनका तर्क था कि जब उनका पक्ष सर्वांश में न्यायसंगत है तो तेजावत जी को आत्म-समर्पण क्यों करना चाहिए? इसके विपरीत वे चाहते थे कि रियासतें उनकी उचित मांगों को मान लें तो संघर्ष का कोई आधार ही नहीं रहे. किन्तु रियासतों द्वारा इस प्रकार तेजावत जी के आत्म-समर्पण के पूर्व एकपक्षीय निर्णय लेने की संभावना नहीं थी. महात्मा गांधी का सोचना था कि तेजावत जी के आत्म-समर्पण के पश्चात् किसी न किसी समझौते पर पहुंचने में सुविधा होगी. उस स्थिति में रियासतों पर अपना नैतिक दायित्व स्वीकार करने के लिए दबाव भी डाला जा सकता है. तेजावत जी ने भी गांधी जी के आदेश का पालन करना ही उचित समझा, क्योंकि इससे उनके आन्दोलन में शिथिलता आने की कोई संभावना नहीं थी, इसके विपरीत गांधी जी एवं कांग्रेस जैसी बड़ी राजनीतिक संस्था का संबल एवं समर्थन उन्हें मिल रहा था.

स्वैच्छिक आत्म-समर्पण :

आन्दोलन के सभी सन्दर्भों पर भली-भांति विचार कर लेने के पश्चात् अन्ततोगत्वा तेजावत जी ने स्वेच्छापूर्वक यह साहसिक निर्णय लिया कि उन्हें आगे आकर पुलिस को अपनी गिरफ्तारी दे देनी चाहिए. तदनुसार उन्होने ईडर रियासत के खेड़ब्रह्मा गांव मे ब्रह्माजी के मन्दिर मे स्वयं को गिरफ्तारी के लिए प्रस्तुत किया. सात वर्ष से अधिक समय तक आदिवासी जन-जीवन में एकरस हो जाने के पश्चात् अब उनसे विदा लेने के ये क्षण तेजावतजी और आदिवासी दोनों के लिए बड़े ही करुण एवं रोमांचक थे. जिस व्यक्ति को लाखों आदिवासी अपने पिता एवं देवता तुल्य पूजते थे, वह सन् 1929 में सात वर्ष के अज्ञातवास के पश्चात् उनसे विदा ले रहा था. भविष्य किस ओर करवटें लेगा, यह भी अज्ञात था. जिस व्यक्ति की ओर जीवन-मरण में, सुख-दुःख में तथा अपनी समस्याओं के निदान के लिए वे देखते थे, वह अब प्रशासन के कठोर चंगुल में जा रहा

है, तथा वे नितान्त साधनहीन हो रहे हैं. आदिवासी भविष्य की आशंकाओं से भी इस कारण चिन्तित थे कि तेजावत जी की अनुपस्थिति में विभिन्न रियासती प्रशासन उनके साथ न जाने कैसा व्यवहार करेंगे. किन्तु जो निर्णय लिया गया था, वह अन्तिम था. उससे मुड़ने का कोई प्रश्न ही नहीं था. फिर महात्मा गांधी का आशीर्वाद तेजावत जी के साथ था. ईडर रियासत की पुलिस ने उनको गिरफ्तार किया. पुलिस के संरक्षण में उन्हें हिम्मत नगर ले जाया गया. साथ में एक हजार भीलों का कारवाँ था वहाँ से तेजावत जी को ईडर ले जाया गया.

ईडर रियासत ने राजपूताने के ए.जी.जी. को शीघ्र लिखा कि वह तेजावत जी को नहीं रखना चाहती है अतः आगे जैसा उचित समझा जाय वैसी कार्यवाही की जाय. इसी प्रकार गुजरात की अन्य रियासतों ने भी उनको रखने में अपनी असहमति व्यक्त की.

इन रियासतों को यह भय था कि यदि तेजावत जी उनके यहाँ कारावास में रखे जायेंगे, तो आदिवासी कभी भी उपद्रव कर सकते हैं और अशान्ति भड़क सकती है, अतः उनको वहाँ न रखना ही उचित है. इधर मेवाड़ रियासत ने ए.जी.जी. को लिखा कि तेजावत जी उनकी रियासत के व्यक्ति हैं, अतः उन्हें सौंपा जाय. यद्यपि श्री तेजावत मेवाड़ की जेल में रहने के लिए अनिच्छुक थे, किन्तु ए.जी.जी. के यह आश्वासन देने पर कि उनके प्रति किसी प्रकार का अनुचित एवं कठोर व्यवहार नहीं किया जायेगा और वे एक राजनीतिक बंदी की तरह रखे जायेंगे, उन्हें मेवाड़ की पुलिस को सौंपा गया. उन्हें उदयपुर लाकर वहाँ के केन्द्रीय कारावास में रखा गया. तेजावत जी पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया और उन्हें कारावास की लम्बी सजा दे दी गई. स्वर्गीय विजयसिंह पथिक उदयपुर के केन्द्रीय कारावास की जिस कोठरी में रखे गए थे, उसी कोठरी में तेजावत जी को भी रखा गया. तेजावत जी की गिरफ्तारी पर एक कवि ने बहुत सटीक दोहा कहा:—

"भोमट भानु ने तुरत, दियो जेल में भेज।
हिन्दु रवि नहीं सह सक्यो, तेजावत रो तेज ॥"

उनकी कारावास की अवधि समाप्त हो जाने के उपरान्त भी मेवाड़ प्रशासन ने उनको मुक्त नहीं किया, क्योंकि अधिकारियों को यह आशंका थी कि कहीं वे भील क्षेत्र में जाकर पुनः अशान्ति न फैला दे. अन्त में 23 अप्रेल 1936 को उनको इस शर्त पर मुक्त किया गया कि वे बिना अनुमति के भील क्षेत्र में नहीं जायेंगे. यह तो

स्पष्ट ही था कि भविष्य में राज्य सरकार कभी भी उनको भील क्षेत्र में जाने की अनुमति देने वाली नही थी.

तेजावत जी 6 अगस्त 1929 से 23 अप्रेल 1936 तक लगभग सात वर्ष तक उदयपुर के केन्द्रीय कारावास में रहे. इस समय तेजावत जी की आयु 50 वर्ष की हो गई थी. उन्होंने अपने यौवन काल के सम्पूर्ण बहुमूल्य वर्ष आन्दोलन, अज्ञातवास तथा कारावास की लम्बी सजा भोगते हुए व्यतीत कर दिये थे और इस क्रम का अभी अन्त नहीं हुआ था.

कारावास से मुक्त हो जाने पर भी राज्य-सरकार ने उनको उदयपुर नगर की सीमा में नजरबन्द रखा. वे छोटी जेल से छूटकर अब एक बड़ी जेल मे रहने लगे. पुलिस का एक सिपाही उन पर नियन्त्रण रखने के लिए निरन्तर उनके साथ रहने लगा. वे कभी भी नगर की चहार दिवारी के बाहर नहीं जा सकते थे. इस प्रतिबन्धित जीवन को उन्हें अनिच्छापूर्वक स्वीकार करना पड़ा.

अष्टम अध्याय

मेवाड़ प्रजामंडल एवं अगस्त क्रान्ति में योगदान

वर्तमान शताब्दी के तीसरे दशक में सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत में स्वाधीनता संग्राम अपनी तीव्रता पर था. महात्मा गांधी, पण्डित नेहरू, सरदार पटेल, सुभाष चन्द्र बोस एवं अन्य कई कर्मठ देश-भक्त नेताओं के मार्गदर्शन में अंग्रेजों के साथ असहयोग आन्दोलन चल रहा था. इसका प्रभाव देशी रियासतों पर भी पड़ना स्वाभाविक था. राजस्थान में प्रायः सभी रियासतों की जनता मौलिक अधिकारों एवं उत्तरदायी शासन के लिए मांग करने लगी थी. अखिल भारतीय कांग्रेस भी रियासतों की आन्तरिक राजनीतिक स्थिति में रुचि लेने लगी थी.

महात्मा गांधी एवं कांग्रेस की रियासती नीति :

महात्मा गांधी की रियासती आन्दोलनों के साथ उनके प्रारम्भ से ही सहानुभूति रही थी. बिजोलिया आंदोलन तथा भील आंदोलन में उन्होंने गहरी दिलचस्पी ली तथा

समय-समय पर अपने प्रतिनिधि भेजकर मार्गदर्शन देते रहे. किन्तु वे प्रारम्भ में रियासतों के साथ संघर्ष को टालना चाहते थे. वे चाहते थे कि यथासंभव नरेशों के साथ सहयोग करते हुए रियासती कार्यकर्ता रचनात्मक कार्यों द्वारा जनता की सेवा करते रहें. गांधीजी की रियासतों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने की नीति के पीछे कुछ कारण थे. उनका विश्वास था कि जब वे ब्रिटिश भारत में सफलता प्राप्त कर लेंगे तो उनका प्रभाव रियासतों पर भी पड़ेगा. वे यह भी चाहते थे कि कांग्रेस भी रियासतों के मामले में हस्तक्षेप न करें. रियासतों की स्वतंत्र संस्थाओं को ही यह कार्य करना चाहिए. फिर भी उनका नरेशों के लिए यह स्पष्ट निर्देश था कि वे प्रजा के ट्रस्टी, संरक्षक या सेवक बन कर रहें, उनका अस्तित्व तभी रह सकेगा.

कांग्रेस की रियासतों सम्बन्धी नीति की पृष्ठभूमि में भी महात्मा गांधी की ही विचारधारा थी. आगे चलकर कांग्रेस की इस नीति में क्रमशः परिवर्तन आता गया. कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों मे रियासतों के प्रतिनिधि सम्मिलित होते थे. वे कांग्रेसी नेताओं पर रियासतों के आन्तरिक मामलों में अहस्तक्षेप की नीति छोड़कर सक्रिय समर्थन देने हेतु जोर दे रहे थे. कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन (1920), मद्रास अधिवेशन (1927), कलकत्ता अधिवेशन (1928), जबलपुर अधिवेशन (1935), हरिपुरा अधिवेशन (1938), लखनऊ अधिवेशन (1936) और त्रिपुरी अधिवेशन (1939) आदि में प्रस्ताव पारित कर कांग्रेस ने नरेशों से अनुरोध किया कि वे अपनी-अपनी रियासतों में प्रतिनिधि संस्थाएं स्थापित कर उत्तरदायी शासन लागू करें तथा जनता को मौलिक अधिकार प्रदान करें.

सन् 1930 और 1932 में कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार के बीच संघर्ष हुआ. सत्याग्रह आन्दोलन अपनी तीव्रता पर था. इसमें रियासती जनता ने भी सक्रिय भाग लिया.

इसके अतिरिक्त अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् नाम की एक केन्द्रीय संस्था का भी संगठन अस्तित्व मे आ गया था. परिषद् ने रियासतों के स्वाधीनता आंदोलन में पर्याप्त योगदान दिया. कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों मे इस संस्था के विशेष प्रयत्नों से कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत किये गए.

अनेक रियासतों में स्थानीय राजनीतिक संस्थाएं सक्रिय हो गई थीं और वे उत्तरदायी शासन के लिए संघर्ष कर रही थी. कांग्रेस और उसके नेताओं का भी रियासतों को अब पूरा समर्थन मिल रहा था.

मेवाड़ की राजनीतिक गतिविधि, मेवाड़ प्रजामंडल की स्थापना :

जन आंदोलन की दृष्टि से मेवाड़ राज्य काफी आगे रहा. बिजोलिया आंदोलन, भील आंदोलन एवं अन्य आंदोलनों का व्यापक प्रभाव हुआ. सामन्ती अत्याचार और उत्पीड़न के गहरे कुहासे में सांस लेती हुई मेवाड़ की जनता तक चेतना और जागृति की किरणें पहुंच चुकी थी. सामन्ती शासन ने अनेक प्रकार की लागतों, करों, बेगार, शोषण तथा गुलामी के शिकन्जे में असहाय जनता को जकड़ रखा था. जनता के सभी मौलिक अधिकारों पर कठोर अंकुश लगा हुआ था. जागीरदारी शासन में स्थिति और भी विकृत थी, प्रजामंडल की स्थापना के प्रयास मेवाड़ में भी हो रहे थे, किन्तु राज्य के दमन के कारण उसमें सफलता नहीं मिल रही थी. अन्ततोगत्वा कतिपय कर्मठ कार्यकर्ताओं ने कठिन परिश्रम कर प्रजामण्डल का विधान बनाया और 24 अप्रेल 1938 को मेवाड़ प्रजामण्डल की स्थापना कर दी. इस कार्य को मूर्तरूप देने वाले नेताओं में अग्रणी सर्व श्री माणिक्यलाल वर्मा, बलवन्त सिंह मेहता, भूरे लाल बया, रमेश चन्द्र व्यास, भवानी शंकर वैद्य, हीरालाल कोठारी, जमना लाल वैद्य, दया शंकर श्रोत्रिय एवं परसराम आदि थे. श्री माणिक्य लाल वर्मा राज्य से निष्कासित थे, फिर भी अनेक बाधाओं के रहते हुए वे उदयपुर पहुंचे और साधनों का नितान्त अभाव रहते हुए भी उन्होंने प्रजामंडल की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान दिया. श्री बलवन्त सिंह मेहता प्रजामण्डल के प्रथम अध्यक्ष एवं माणिक्य लाल वर्मा प्रधानमन्त्री निर्वाचित हुए.

प्रजामण्डल की स्थापना के फलस्वरूप जनता के उत्साह में काफी वृद्धि हुई. कुछ दिनों में ही इसके एक हजार से अधिक सदस्य बन गये.

सदस्यता अभियान में श्री तेजावत ने अत्यधिक परिश्रम करके सैकड़ों सदस्य बनाये. प्रजामण्डल के अध्यक्ष ने उनके कार्य की मुक्त कंठ से सराहना की.

सत्याग्रह एवं दमन :

प्रजामण्डल का स्पष्ट उद्देश्य महाराणा की छत्रछाया में मेवाड़ में उत्तरदायी शासन की स्थापना करना था, ताकि अत्याचार व शोषण की चक्की में पिस रही जनता को त्राण मिल सके और रियासत की आय का समुचित उपयोग जनता की भलाई के लिए किया जा सके. प्रजामण्डल के विधान में आपत्तिजनक कोई बात नहीं थी, किन्तु रियासती प्रशासन ने दमन का सहारा लिया और प्रजामण्डल के जन्म के साथ ही उसे गैर कानूनी घोषित कर दिया. श्री माणिक्य लाल वर्मा को राज्य से निष्कासन की आज्ञा दे दी गई. इसके अतिरिक्त सभाओं, धार्मिक समारोहों, जुलूस,

अखबारों आदि पर भी प्रतिबंध लगा दिया. इसका प्रबल विरोध हुआ. सेठ जमना लाल बजाज ने भी राज्य से पत्र व्यवहार किया, किन्तु राज्य का निरकुश दमन जारी रहा. प्रजामण्डल का मुख्यालय अजमेर स्थानान्तरित कर दिया गया.

प्रजामण्डल का संगठन अभी सम्यक प्रकार से खड़ा नहीं हुआ था; प्रजामण्डल के कार्यकर्ता अविलंब संघर्ष छेड़ना चाहते थे. इसके लिए प्रजामण्डल के लिए अजमेर मुख्यालय में आवश्यक तैयारियां की गई. महात्मा गांधी का आशीर्वाद प्राप्त करके 4 अक्टूबर 1938 को श्री माणिक्य लाल वर्मा के नेतृत्व में सत्याग्रह आरंभ कर दिया गया. सरकार भी दमन के लिए कटिबद्ध थी. उसने प्रजामण्डल के सभी नेताओं और कार्यकर्ताओं को उदयपुर, नाथद्वारा तथा मेवाड़ के अन्य स्थानों पर सत्याग्रह करते हुए गिरफ्तार कर लिया. कुछ नेताओं को निष्कासित कर दिया गया. कई स्थानों पर लाठीचार्ज हुआ. श्री माणिक्य लाल वर्मा अजमेर से सत्याग्रह का संचालन कर रहे थे. उनके साथ फरवरी 1939 में देवली में मारपीट कर दुर्व्यवहार किया गया तथा उन्हें मेवाड़ की सीमा में बलपूर्वक लाकर गिरफ्तार कर लिया गया.

इस बीच भील नेता श्री मोती लाल तेजावत जनता को सत्याग्रह के लिए निरन्तर प्रोत्साहित एवं प्रेरित कर रहे थे. उन्होंने अनेक व्यक्तियों को सत्याग्रह के लिए तैयार किया. देश भक्ति एवं जनता के आह्वान पर वे सबसे आगे रहने वाले व्यक्तियों में से थे.

तेजावतजी पुनः गिरफ्तार :

श्री तेजावतजी स्वयं अन्य व्यक्तियों के साथ दिनांक 15 2.39 को सत्याग्रह करते हुए गिरफ्तार कर लिए गए. उनकी गिरफ्तारी पर भील जाति में सनसनी फैल गई. सत्याग्रही नेताओं को विभिन्न जेलों में ठूंस दिया गया. कुछ को ऐसे स्थानों पर भेजा गया; जो राज्य में काला पानी के नाम से जाने जाते थे. श्री तेजावत को उदयपुर के केन्द्रीय कारावास में रखा गया.

सत्याग्रह स्थगित :

सत्याग्रह पूरे छः मास तक चलता रहा. बाद में वह महात्मा गांधी के आदेशानुसार स्थगित कर दिया गया. यद्यपि सत्याग्रह वर्ष 1939 के प्रारंभ में ही स्थगित कर दिया गया था किन्तु सत्याग्रहियों को जेलों से शीघ्र मुक्त नहीं किया गया. उन्हें धीरे-धीरे सितंबर के अन्त तक रिहा किया गया. अब कार्यकर्ता रचनात्मक कार्य करने लगे. उनके प्रयास के फलस्वरूप राज्य में बेगार-प्रथा बन्द हुई. श्री तेजावत भी जेल से अन्य कार्यकर्ताओं के साथ मुक्त किये गये.

राज्य की न्याय-व्यवस्था पर प्रश्न-चिह्न :

प्रजामण्डल आन्दोलन के सिलसिले में जब श्री तेजावत उदयपुर के केन्द्रीय कारागार में सजा भोग रहे थे तो उदयपुर के बुद्धिजीवी वर्ग ने देखा कि श्री तेजावत को अनिश्चितकाल के लिए जेल में डाल दिया गया है तथा उन पर लगाये गये आरोपों की सुनवाई के लिए मुकदमा न्यायालय में नहीं भेजा रहा है तो उन्होंने निर्णय लिया कि श्री तेजावत की ओर से न्यायालय में बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका प्रस्तुत की जानी चाहिए, जिससे कि उन पर लगाए गए आरोपों की व्यर्थता सिद्ध करने का उन्हें अवसर मिल सके तथा उन्हें न्याय मिल सके.

उस समय के प्रसिद्ध एडवोकेट तथा बाद में राजस्थान विधान-सभा के अध्यक्ष रहे श्री निरंजननाथ आचार्य बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका पर श्री तेजावत के हस्ताक्षर प्राप्त करने के लिए केन्द्रीय कारागार में गए तथा उन्होंने श्री तेजावत से याचिका पर हस्ताक्षर करने के लिए आग्रह किया. श्री तेजावत को राज्य की न्याय-व्यवस्था का लम्बा अनुभव था अतः उन्होने सधा हुआ सा संक्षिप्त उत्तर दिया कि जिस राज्य में न्याय स्वयं बंदी है, उससे न्याय प्राप्त करने की आशा करना व्यर्थ है. यह कह कर उन्होंने हस्ताक्षर करना अस्वीकार कर दिया.

इस प्रकार उन्होंने जेल-जीवन की कठोरता को निर्भीकतापूर्वक अंगीकार कर लिया. इसके साथ ही उन्होने तत्कालीन न्याय-व्यवस्था पर एक बड़ा प्रश्न-चिह्न भी लगा दिया.

हैदराबाद का आर्य-सत्याग्रह :

भारत की सबसे बड़ी रियासत होने के बावजूद हैदराबाद में नागरिक एवं धार्मिक स्वतन्त्रता का दायरा बहुत ही संकुचित था. वहां के शासकों की स्वेच्छाचारिता के कारण हैदराबाद में कांग्रेस दो बार सत्याग्रह कर चुकी थी. रियासत में अधिकांश हिन्दू जनसंख्या थी, किन्तु उसके किसी भी न्यायसंगत आन्दोलनों को साम्प्रदायिक घोषित कर दिया जाता था. न पुराने मन्दिरों की मरम्मत कराने की आज्ञा मिलती थी, न नये देवालयों का निर्माण किया जा सकता था. हिन्दू और मुसलमानों के त्यौहार एक साथ आ जाने पर हिन्दुओं के त्यौहारों पर प्रतिबंद लगा दिया जाता था.

हैदराबाद की आर्य सार्वदेशिक सभा ने धार्मिक स्वतंत्रता के लिए ज्ञापन भेजे, पर कोई परिणाम नहीं निकला. विवश होकर सभा को 22 जनवरी 1939 को

सत्याग्रह का शंखनाद कर देना पड़ा. सारे भारतवर्ष से धन-जन की सहायता मिली. पूरे देश से जत्थों के आने का क्रम प्रारम्भ हो गया. 5 माह में लगभग 10 हजार सत्याग्रही जेलों में पहुंच गए और नये जत्थे आ रहे थे. जेलों में सत्याग्रहियों पर निरंकुश दमन किया गया. 5 मास में 10 सत्याग्रही जेलों में शहीद हो गए. जेलों में लाठीचार्ज और खराब भोजन दिया गया. कई प्रान्तों में हैदराबाद के आन्दोलन के समर्थकों पर पाबन्दियां लगा दी गई. हैदराबाद सत्याग्रह साम्प्रदायिक आन्दोलन नहीं था. वह शुद्ध धार्मिक आन्दोलन था, जिसका राष्ट्रीय कांग्रेस भी समर्थन कर चुकी थी. *कांग्रेस ने अपने सदस्यों को व्यक्तिगत तौर पर भाग लेने की अनुमति दे दी थी.* सत्याग्रह अहिंसक आधार पर चल रहा था. श्री तेजावत ने नैतिक दृष्टि से यह आवश्यक समझा कि इस सत्याग्रह में सभी कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तियों को भाग लेना चाहिए. वास्तव में तेजावत जी का दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक था. वे पूरे देश को अपनी मातृभूमि समझते थे और उसके लिए वे अपना सर्वस्व अर्पित करने के लिए तत्पर रहते थे. देश के किसी भी भाग में आवश्यकता पड़ने पर अपना सक्रिय सहयोग देने में वे पीछे नहीं रहते थे. भील आंदोलन के सम्बन्ध में भी यही आदर्श उनके सामने रहा. आदिवासियों के लिए कार्य करते हुए वे केवल मेवाड़ तक ही सीमित नहीं रहे, किन्तु उन्होंने अपने आन्दोलन का प्रसार मेवाड़ के पड़ोस की कई रियासतों तक किया. उनके लिए सारे आदिवासी समान थे. उन्होंने रियासती आधार पर इस सम्बन्ध में कोई भेदभाव नहीं किया.

इसी आदर्श से प्रेरित होकर हैदराबाद सत्याग्रह में सम्मिलित होने के लिए उन्होंने उदयपुर से अगस्त 1939 के प्रारम्भ में प्रस्थान किया. उनके साथियों में श्री भंवरलाल पालीवाल एव पेन्टर श्री कृष्ण पारीक भी थे. किन्तु जब वे इन्दौर पहुंचे तो उन्हें सूचना मिली कि अगस्त 1939 के प्रथम सप्ताह में सत्याग्रह स्थगित हो गया है. अब उनके लिए आगे जाने की आवश्यकता नहीं थी. अतः वे इन्दौर से वापिस उदयपुर लौट आये.

पुनः भील क्षेत्र की ओर :

1939 में मेवाड़ के अधिकांश क्षेत्र में भयंकर दुष्काल की स्थिति थी. गरीब जनता के लिए अन्न और पशुओं के लिए घास का नितान्त अभाव था. अनावृष्टि के कारण स्थिति और भी विकट हो गई थी. पीने के पानी का भी अभाव हो गया था. आदिवासी-जनता की दशा अत्यन्त दयनीय हो गई थी. आदिवासी जानवरों का मांस और हड्डियां और वृक्षों के पत्ते खाने लिए विवश हो गए थे. पशु बिना घास और पानी के मर रहे थे. गांवों के बाहर मृत पशुओं के ढ़ेर लग रहे थे.

यह भी अफवाह थी कि भील भूख से व्याकुल होकर गो मांस भी खाने लग गए थे. तेजावत जी को जब इस बात का पता चला तो वे भील क्षेत्र में जाकर भीलो को गो मास खाने से विरत करने के लिए आतुर हो उठे. जिन आदिवासियो के लिए उन्होंने जीवन के बहुमूल्य वर्ष होम दिये थे, उनको वे गलत राह पर जाते हुए कैसे देख सकते थे, यद्यपि वे सकटापन्न अवस्था मे अपनी काया को रखने के लिए मांसाहार के लिए विवश हुए थे.

उन्होने मेवाड़ के भोमट क्षेत्र मे जाने के लिए राज्य-सरकार से अनुमति मांगी, किन्तु वह नही मिली. सरकार को आशंका थी कि तेजावत जी भीलों को पुन. विद्रोह के लिए प्रेरित कर सकते हैं, अतः वह उनको वहां नही जाने देना चाहती थी. किन्तु दिसम्बर 1939 मे श्री तेजावत उदयपुर से भील क्षेत्र के लिए रवाना हो गए. उनको नाई गांव मे पुलिस ने वापिस गिरफ्तार कर लिया और उदयपुर लाकर नजरबन्द कर लिया. श्री तेजावत ने यद्यपि राज्य सरकार को लिख कर दिया था कि इस बार वे भील क्षेत्र मे विशिष्ट उद्देश्य लेकर जा रहे हैं. भीलों को विद्रोह के लिए प्रेरित करने जैसी कोई बात उनके मस्तिष्क में नही है. वे उनको केवल मासाहार से विरत करने के लिए वहां जा रहे हैं, किन्तु सरकार कोई भी खतरा मोल लेना नही चाहती थी, अतः उसने तेजावत जी के मार्ग में अवरोध उपस्थित करना ही उचित समझा. मेवाड़ प्रजामण्डल ने सहायता केन्द्र खोल कर जनता की यथाशक्ति सहायता की. सरकार ने भी कुछ नये कार्य प्रारंभ कर रोजगार के साधन जुटाये तथा अभावग्रस्त जनता को मुफ्त अन्न बांट कर वांछित योगदान दिया.

1942 की अगस्त क्रान्ति में योगदान :

सन् 1939 से संसार द्वितीय विश्व युद्ध की प्रलयंकर विभीषिका से जूझ रहा था. अंग्रेज सरकार की सम्पूर्ण शक्ति इस समय युद्ध पर केन्द्रित थी. इस समय भारत में राजनीतिक उथल-पुथल का सामना करना उनके लिए एक भारी समस्या बन गई थी. यद्यपि ब्रिटिश भारत के कई प्रान्तो मे कांग्रेस ने अपने मन्त्रीमण्डल बना लिए थे, किन्तु इन मन्त्रीमण्डलों को पर्याप्त अधिकार नहीं दिये जाने से वे असन्तुष्ट थे. ऐसी स्थिति मे कांग्रेस के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ने का यह बहुत उपयुक्त अवसर था, अतः महात्मा गांधी ने अगस्त 1942 मे अंग्रेजों के विरुद्ध "भारत छोड़ो" आन्दोलन छेड़ दिया. इस समय उन्होंने सर्वप्रथम रियासती जनता का भी स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय योगदान देने हेतु आह्वान किया. उन्होने अगस्त 1942 में बम्बई में अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा-परिषद् के सभी कार्यकर्ताओं को तथा रियासती प्रजामण्डलों के मुख्य कार्यकर्ताओं को आमन्त्रित किया. उन्होने ब्रिटिश भारत के लिए "अंग्रेजों भारत छोड़ो"

का नारा दिया तथा रियासती प्रजामण्डलों को यह निर्देश दिया कि वे अपनी-अपनी रियासतों के नरेशों को अन्तिम रूप से नोटिस देवें कि वे ब्रिटिश सरकार से अविलम्ब सम्बन्ध-विच्छेद कर तथा उसके साथ की गई संधियों को भंग कर दे.

मेवाड़ प्रजामण्डल पर प्रतिबन्ध लगा हुआ था. उसने प्रतिबन्ध हटाने के लिए आन्दोलन करने का निश्चय किया. इस सम्बन्ध में सभाएं की जाने लगी तथा पत्र-पत्रिकाओं में लेख छपने लगे. इस समय देश की अन्य रियासतों की नीति में भी परिवर्तन हो रहा था. मेवाड़ के प्रधानमन्त्री सर टी. विजय राघवाचार्य ने भी प्रशासन को अधिक उदार बनाने का प्रयास किया. फलस्वरूप महाराणा के जन्म दिवस के उपलक्ष में 22 फरवरी 1941 को प्रजामण्डल पर से प्रतिबन्ध उठा लिया गया. इसके साथ धारा सभा की स्थापना करने की घोषणा भी की गई.

प्रतिबन्ध उठ जाने के बाद प्रजामण्डल का व्यापक स्तर पर एक दृढ़ संगठन खड़ा किया गया. नवम्बर,41 में प्रजामण्डल का प्रथम अधिवेशन श्री माणिक्य लाल वर्मा की अध्यक्षता में समारोहपूर्वक आयोजित किया गया. राष्ट्रीय कांग्रेस के महामन्त्री आचार्य कृपलानी एवं श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने क्रमशः अधिवेशन और प्रदर्शनी का उद्घाटन किया. अधिवेशन में कई उपयोगी प्रस्ताव पारित किये गए.

किंतु 1942 में परिस्थितियां एकदम बदल गई. महात्मा गांधी के निर्देशानुसार मेवाड़ प्रजामण्डल ने 20 अगस्त, 1942 को महाराणा को एक प्रार्थना-पत्र भेजकर निवेदन किया कि वे सार्वभौम सत्ता से सम्बन्ध विच्छेद कर लें तथा राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना करें. दूसरे ही दिन 21 अगस्त, 1942 को प्रजामण्डल के अध्यक्ष श्री माणिक्य लाल वर्मा को गिरफ्तार कर लिया गया. सामूहिक गिरफ्तारियां हुई तथा सभाओं पर रोक लगा दी गई प्रजामण्डल को गैर कानूनी करार देकर इस पर पुनः प्रतिबन्ध लगा दिया गया मेवाड़ प्रजामण्डल तथा राज्य के बीच पुनः संघर्ष छिड़ गया. उदयपुर में सम्पूर्ण हड़ताल हो गई. शिक्षण संस्थाएं बन्द हो गई. छात्रों ने भी सक्रिय भाग लिया. बहुत से छात्रो को गिरफ्तार किया गया. नगर में जुलूस निकाले गए, जिनमें "अंग्रेजों भारत छोड़ो" के अतिरिक्त "देशप्रेम" के नारे लगाये गए. मेवाड़ के अन्य कस्बो और ग्रामीण क्षेत्रों मे भी यह आंदोलन चला. 500 से अधिक कार्यकर्ता जेलों मे चले गए.

श्री शेखावत, 1939 में जेल से छूटने के पश्चात् नगर में नजरबन्दी की स्थिति में रहते थे, किंतु उदयपुर में प्रतिबन्धित जीवन जीते हुए भी वे प्रजामण्डल की गतिविधि में निरन्तर सक्रिय सहयोग देते रहते थे. प्रजामण्डल की सभाओं मे तथा जुलूसों में भी

सम्मिलित होते रहते थे. उनके जीवन का एक-एक अणु देशभक्ति के तत्वों से निर्मित था. वे राज्य द्वारा निरंकुश दमन का अहिंसक रीति से सामना करने वालों में अग्रगण्य थे. इतना ही नहीं, वे उदयपुर में नजरबन्द रहते हुए भी निरन्तर आदिवासियों के सम्पर्क में रहते थे. प्रजामण्डल के प्रयास से भीलों एवं अन्य किसानों की जमीनें कुर्क होना बन्द हो गया. जागीरी जनता के विवादों का राज्य के प्रधानमन्त्री एवं जागीरदारों से मिलकर समाधान कराया गया. आदिवासी क्षेत्र में भील सेवा कार्य आरम्भ किये गये. पुराने कर्जों के निपटाने के भी प्रयास किये गये. निस्सदेह इन सब कार्यों के पीछे तेजावत जी की लगन और प्रेरणा तो थी ही.

"भारत छोड़ो" आन्दोलन में गिरफ्तार :

अब जबकि महात्मा गांधी ने संघर्ष का बिगुल बजा दिया था और मेवाड़ प्रजा-मण्डल ने भी उनके निर्देशानुसार आन्दोलन का श्री गणेश कर दिया था तो तेजावत कहां पीछे रहने वाले थे. बढ़ती हुई आयु में भी उनके उत्साह में कोई कमी परिलक्षित नहीं हो रही थी, प्रत्युत् वह बढ़ता ही जा रहा था. वे भी सत्याग्रहियों के जत्थे में सम्मिलित हुए और "भारत छोड़ो" आंदोलन के प्रारम्भ होने के तीसरे ही दिन 22 अगस्त 1942 को उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया. यह उनकी तीसरी गिरफ्तारी थी. पहले उन्हें उदयपुर के केन्द्रीय कारावास में रखा गया, फिर ईसवाल जेल और फिर पुनः उदयपुर के केन्द्रीय कारावास में रख दिया गया. यद्यपि राज्य ने फरवरी 1944 तक अन्य सभी बन्दियों को मुक्त कर दिया था किन्तु तेजावत को इस बार लगभग तीन वर्ष की लम्बी अवधि तक कारावास में रखकर *1945* में जेल से रिहा किया गया. इससे प्रतीत होता है कि राज्य सरकार उनसे सर्वाधिक आतंकित थी, और वह उन्हें शीघ्र ही मुक्त कर कोई संकट मोल लेना नहीं चाहती थी. इससे यह भी प्रकट होता है कि सरकार अभी तक आदिवासियों की समस्याओं का पूर्णतः समाधान करने के लिए तैयार नहीं थी. जेल से मुक्त होने पर तेजावतजी को पुनः नजरबन्दी की स्थिति में रहना पड़ा.

पुनः आदिवासी क्षेत्र की ओर :

श्री तेजावत का अहर्निश आदिवासियों की समस्याओं पर चिन्तन चलता रहता था. वे प्रजामण्डल के माध्यम से तथा सीधे महाराणा से निवेदन कर इन समस्याओं का यथासम्भव निराकरण कराने के प्रयास करते रहते थे. आदिवासी क्षेत्र में जाकर भील बन्धुओं से मिलने तथा उनके दुख-दर्द में व्यक्तिशः भागीदार बनने की उनकी उत्कट लालसा कभी भी कम नहीं होती थी. उनका वास्तविक हृदय आदिवासियों की व्यथा से

द्रवित हो उठता था. अपने हृदय की व्यथा को दबाना उनके लिए अशक्य हो जाता और वे नजरबन्दी के कृत्रिम बन्धन को तोड़ने के लिए छटपटाने लगते थे. उनका संघर्षशील हृदय कभी ऐसे बन्धनों को स्वीकार नहीं करता था. वे अपना वास्तविक स्थान भीलों के मध्य मानते थे और आजीवन उन्हीं की सेवा के लिए अपने जीवन की उपयोगिता समझते थे. उनका संवेदनशील हृदय अत्यन्त कोमल था. आदिवासियों की वेदना से उनके हृदय के तार झंकृत हो उठते थे, और उन्हें सुखी करने के लिए वे अपने अस्तित्व को भी दांव पर लगाने को तत्पर रहते थे.

उन्होंने अपने ऊपर थोपे एक नजरबन्दी के अन्यायमूलक प्रतिबन्ध को भंग कर पुनः भील क्षेत्र में जाने का विचार किया.

अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद का अधिवेशन :

इस बीच उदयपुर में अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद का अधिवेशन करने का निश्चय किया गया. यह अधिवेशन उदयपुर में दिसम्बर 1945 के अन्त और जनवरी 1946 के प्रारंभ में हुआ. इस कारण तेजावतजी को भील क्षेत्र में जाने का विचार कुछ समय के लिए स्थगित करना पड़ा.

पण्डित जवाहर लाल नेहरू अधिवेशन के अध्यक्ष थे. अधिवेशन में रियासतों के भावी स्वरूप के विषय में महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किये गए. एक प्रस्ताव में कहा गया था कि रियासतें स्वतन्त्र और संगठित भारत के अंग के रूप में रहें और उनमें पूर्ण उत्तरदायी शासन हो. यह भी निश्चय किया गया कि भावी विधान निर्मातृ सभा में रियासती जनता के चुने हुए प्रतिनिधि ही भेजे जायें. परिषद के अधिवेशन में 77 राज्यों की लोक-संस्थाओं के चुने हुए प्रतिनिधियों ने भाग लिया. इस अधिवेशन में सभी रियासतों के जन संगठनों के प्रतिनिधियों को परिषद के अन्तर्गत एक सूत्र में बान्धने का महत्वपूर्ण कार्य किया गया.

अधिवेशन में भारत के चुने हुए नेताओं ने भाग लिया. मेवाड़ के राजनीतिक वातावरण में इस अधिवेशन का दूरगामी प्रभाव हुआ. नरेश एवं सामन्ती तत्वों को अपना भविष्य अब स्पष्ट दिखाई देने लगा. जनता में प्रबल जागृति का सूत्रपात हुआ. साथ ही उसमें साहस एवं स्वाभिमान का प्रादुर्भाव हुआ. अधिवेशन में तेजावतजी को देश के अनेक चोटी के नेताओं से मिलने का अवसर मिला. सभी ने तेजावतजी के कार्य की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की.

देशी राज्य लोक परिषद के अधिवेशन के समापन के शीघ्र पश्चात जनवरी 1946

के प्रथम सप्ताह में श्री तेजावत जी ने भील क्षेत्र के लिए प्रस्थान किया. किन्तु राज्य सरकार की उन पर गृद्ध दृष्टि तो रहती ही थी. कदाचित नजरबन्दी की स्थिति मे उनके साथ रहने वाले सिपाही ने अधिकारियों को तेजावतजी की प्रस्तावित यात्रा की सूचना दे दी. राज्य प्रशासन ने उनको बिना विलम्ब गिरफ्त में ले लिया और उन्हें पुनः जेल के सीखचों मे बन्द कर दिया. राज्य सरकार अब किसी भी स्थिति में उनको भील क्षेत्र मे जाने की अनुमति देने को तैयार नही थी. जब-जब भी तेजावतजी ने भीलों में जाने के प्रयास किये, तब-तब उसने उनके प्रयत्नो को विफल कर दिया. इस बार राज्य सरकार ने उन्हें शीघ्र मुक्त करना भी ठीक नही समझा और उन्हें पूरे वर्ष भर जेल की यातनाओं को सहने के लिए विवश कर दिया. एक ओर राज्य प्रशासन प्रजामंडल के नेताओं के साथ उत्तरदायी शासन की सम्भावित प्रक्रिया पर विचार विमर्श कर रहा था, तो दूसरी ओर वह प्रजा सेवकों को अकारण जेलों मे भेजकर निर्मम व्यवहार कर रहा था. इस प्रकार परस्पर विरोधी प्रक्रियाओं में तालमेल बिठाना नितान्त असम्भव था. प्रजामण्डल के कार्यकर्ताओं ने राज्य सरकार के निन्दनीय कार्य की भर्त्सना अवश्य की, किन्तु वह अरण्यरोदन ही सिद्ध हुई. यह तो सभी संबधित पक्ष समझने लगे थे कि सामन्तशाही के दिन अब लदने वाले हैं, क्योंकि न केवल ब्रिटिश भारत में अपितु समग्र रियासती भारत में भी परिवर्तन की आंधी तीव्रता से चल रही थी. कई रियासतों ने शासन-सुधारों की घोषणा कर दी थी तथा केंद्रीय ब्रिटिश सत्ता का सिंहासन भी डगमगा रहा था आने वाले तूफान में देश का कैसा स्वरूप हो जायेगा, यह तो उस समय तक पूर्णतः स्पष्ट नही हो पाया था, किन्तु यह तो सभी जानते थे कि विदेशी शासन अब बालू के ऐसे कगारे पर पहुच गया था, जहां उसके लिए टिके रहना कठिन होगा, और इस अन्धड़ मे रियासती अस्तित्व को शाश्वत जीवन-दान मिलने की तो कल्पना ही नही की जा सकती थी. वास्तव में सभी रियासती प्रशासन अब मृतप्राय हो गए थे. कोई भी संजीवनी उनके जर्जर प्राणों को नव जीवन देने के लिए कारगर सिद्ध नही हो सकती थी. ऐसी स्थिति में तेजावत जी जैसे नरपुंगवों को जेल मे बन्द रखने के प्रयासों को प्रशासन की बौखलाहट के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता था. राज्य सरकार ने 1946 के पूरे वर्ष उन्हें कारावास की यातनाओं से संत्रस्त कर 1947 की 31 जनवरी को मुक्त किया.

सर्वप्रथम उनका साप्ताहिक पत्र नवजीवन के कार्यालय में भव्य स्वागत किया गया. तत्पश्चात् एक विशाल जुलूस में उनको नगर के मुख्य मार्गों में ले जाया गया. स्थान-स्थान पर जनता ने उनका स्वागत कर हर्ष-ध्वनि प्रकट की. अन्त में जुलूस एक विराट जनसभा में परिवर्तित हो गया, जिसमे प्रजामण्डल के नेताओं ने रियासती

प्रशासन को आगाह किया कि वह समय को पहचान कर अविलम्ब शासन-सुधारों की घोषणा करें.

किन्तु राज्य सरकार ने तेजावत जी पर से नजरबन्दी का अवरोध हटा लेने की उदारता अब भी नहीं बताई. वह 14 अगस्त 1947 तक निरन्तर चलता रहा. 15 अगस्त 1947 को तेजावत जी ने स्वतन्त्र देश के मुक्त वायुमण्डल में 25 वर्षों के लम्बे अन्तराल के बाद सांस ली. अब तेजावत जी जीवन के संध्याकाल पर पहुच गए थे. विगत 25 वर्षों का इतिहास उनके जीवन का अत्यन्त संघर्षशील काल का इतिहास था. इस कालखंड पर उनके जीवन के अत्यन्त सजीव, मार्मिक, करुण एवं चित्रोपम प्रसंगों की कहानी अंकित हो गई. दुःख-दर्द की करुण संवेदनाओं से भीगे हुए ये चित्र एक ऐसे व्यक्तित्व को रूपायित करते हैं, जो शोषित एवं दलित वर्ग को अपना भगवान समझता था. नर नारायण का यह अद्भुत मिलन इतिहास के पन्नो पर शताब्दियों में कभी-कभी ही देखने को मिलता है. वास्तव में दरिद्र नारायण के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन होम देने वाला कोई अन्य व्यक्ति ढूंढना हमारे लिए असम्भव नहीं तो कठिन तो है ही.

उनके चारो ओर चलने वाली सामन्ती परिवेश की विकृतियां, कभी न थकने वाली निरन्तर गतिशील भाग दौड़, अनिश्चित भविष्य की कुंठाएं और छल छद्म की आसुरी लीलाएं अब ध्वस्त हो गई थी, अब वे सुख, सन्तोष एवं शान्ति के ऐसे युग में प्रवेश कर रहे थे, जिसमे उनके जीवन के समस्त लक्ष्य साकार होने वाले थे. अब उनकी गतिविधि पर न कोई अंकुश था, न उनके कार्यों को मर्यादित करने वाली निहित शक्तियों के प्रतिरोध ही थे. वे अब स्वाधीनता के अरुणोदय में ऐसी कल्पनाओं को सजोने लगे थे, जिससे दलित वर्ग की लाख-लाख जनता को मानव की तरह जीने का अधिकार प्राप्त होने वाला था. समस्त वर्जनाएं एवं यन्त्रणाएं अतीत के गर्भ में विलीन हो गई थीं. नव नवोन्मेषशालिनी सम्भावनाओं की कल्पनाओं ने उनके व्यक्तित्व के कण-कण को उत्फुल्ल कर दिया था.

अब श्री तेजावत स्वेच्छा से जब चाहते, आदिवासी क्षेत्र में जाते रहते थे और भीलों के अभाव-अभियोगों का लेखा-जोखा लेते रहते थे. तेजावत जी प्रजामण्डल एवं समाचार पत्रों के माध्यम से अथवा सीधे ही इन समस्याओं को शासन के समक्ष प्रस्तुत कर उनका निराकरण करने का प्रयास करते रहते थे. आदिवासी भी निरन्तर तेजावत जी के निवास स्थान पर उदयपुर आते रहते थे और उन्हे भील क्षेत्र की वस्तुस्थिति की जानकारी देते रहते थे. वे आदिवासी जन-जीवन के अभ्युदय एवं कल्याण के लिए सतत् चिन्तन करते रहते थे. उनके जीवन का यह सर्वोच्च लक्ष्य था, जिसे उन्होंने एक पल के लिए भी विस्मृत नहीं किया.

मानवीय सम्बन्धों के पारखी :

तेजावत जी मानवीय सम्बन्धों को निभाने में अत्यन्त कुशल थे. लाखों आदिवासी तो उनके आत्मीय थे ही, पुलिस का वह सिपाही जो नजरबन्दी की स्थिति में उनकी गतिविधि पर निरन्तर दृष्टि रखता था, भी उनका आत्मीय बन गया था. वे उससे अपने अनुज के समान स्नेह करते थे और वह भी उनकी सहायता के लिए सदैव तत्पर रहता था. स्वाधीनता के अवतरण पर उन्होंने दो बन्धुओं की भांति एक दूसरे से विदा ली.

इस पुस्तक के लेखक के साथ तेजावत जी की कई बार भेंट हुई थी. उनके स्नेहार्द्र निर्मल हृदय एवं प्रेरक वाणी की स्मृतियां अब भी लेखक की अमूल्य निधि है.

डायरी लेखन :

अपने जीवन के बहुमूल्य अनुभवों को लिपिबद्ध करने का उन्होंने विचार किया था. इस दृष्टि से उन्होंने डायरी-लेखन भी प्रारम्भ किया था, किन्तु खेद है कि उनकी डायरियों का थोड़ा सा ही अंश प्राप्त है. सुरक्षा के अभाव में उनका अधिकांश लेखन लुप्त हो गया.

आध्यात्मिक जीवन :

संघर्षरत जीवन को उन्होंने धीरे-धीरे आभ्यंतरिक जीवन की ओर मोड़ दिया. वह ऊर्जा, जो लाखों आदिवासियों को अपने ध्येय की ओर अग्रसर करने में समर्थ हुई थी, अब क्रमशः आत्म केन्द्रित होने लगी. आध्यात्मिक दृष्टि से ये दोनों लक्ष्य एक ही शक्ति के प्रतिरूप हैं. एक ओर वह जन-जन के हृदय में आसीन उसी महाशक्ति के दर्शन करता है तो दूसरी ओर वह अपने ही हृदय के केन्द्र में उस महिमामयी शक्ति से साक्षात्कार करता है. तेजावतजी सूझ-बूझ एवं प्रत्युत्पन्न मति के धनी थे. कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी उनकी मेधा और मति विचलित नहीं हुई. विषम समस्याओं से जूझने में उनकी सूझबूझ का अप्रतिम स्थान रहा.

अपरिग्रह के जीवन्त स्वरूप :

तेजावतजी अपरिग्रह के जीवन्त स्वरूप थे. जो व्यक्ति वर्षों दुर्गम स्थलों की खाक छानता फिरता हो, उसे तो परिव्राजक का मूर्तिमन्त विग्रह ही समझना चाहिये. वह क्या माया, प्रपंच के उपकरण एकत्रित कर उन्हें खो सकता था और एक महत्तम ध्येय के रहते इस दिशा में चिन्तन कर सकता था ? तेजावतजी ने जीवन भर दो चार वस्त्रों से अधिक कभी संग्रह नहीं किया. उनकी आवश्यकताएं न्यूनतम थी. इसीलिए वे

हर स्थान में सरलता से समाहित हो जाते थे. उन्हें किसी प्रकार का व्यसन नहीं था, न खान पान में उनकी कोई विशेष रुचि थी. जो कुछ मिल जाता, उसे आनन्द से प्रभु का प्रसाद समझ कर ग्रहण कर लेते थे. यही कारण है कि अपनी नजरबन्दी की अवधि में राज्य से अपने परिवार के साथ जीवन-निर्वाह के लिए 1936 से केवल 30/- रुपये की मासिक वृत्ति स्वीकार की, यद्यपि राज्य उन्हें अधिक देने के लिए तैयार था. यह वृत्ति 1940 मे 40/- रुपये मासिक कर दी गई थी, जो जुलाई 1942 तक मिलती रही. "भारत छोड़ो" आन्दोलन में गिरफ्तार होने पर यह वृत्ति बन्द कर दी गई.

इसी प्रकार उन्होने अपने निवास के लिए नगर के मध्य एक छोटा सा मकान पसन्द किया, जहां उनसे मिलने सभी वर्गों के लोग सरलता से पहुंच सकते थे. यह मकान भी राज्य सरकार ने उनको उनकी नजरबन्दी के समय दिया था. अपनी स्वयं की अथवा अपने परिवार की आवश्यकताओ के लिए कभी उन्होंने किसी के सामने हाथ नही फैलाया. क्षुद्र स्वार्थों के लिए उन्होने कभी अपने सिद्धान्तों एवं आदर्शो का बलिदान नही किया. यद्यपि उनका परिवार निरन्तर आर्थिक संकटों से जूझता रहा फिर भी उन्होंने अपने स्वाभिमान एवं मान-मर्यादा को कभी दांव पर नही लगाया. आज सुख-सुविधा एव विलास के पीछे भागने वालों की चारों ओर बाढ सी आ रही है, और तेजावतजी जैसे वीतराग व्यक्तियों के दर्शन स्वप्न की बात हो गई है. काश ! इस अंधी दौड़ से क्षण भर स्वयं को विलग कर हम हमारी जीवन्त संस्कृति के उन पुजारियों को स्मृति में ला पाते, जिन्होंने न केवल देश की गरिमा और महनीयता में अभिवृद्धि करने मे अभूतपूर्व योगदान दिया, बल्कि जिन्होने इस देश को विश्व का सिर मौर बनाने का भी श्रेय प्राप्त किया. निस्सदेह ये चित्र त्याग, तपस्या, आत्म-बलिदान, सत्य, अहिंसा, करुणा, शान्ति एवं प्रेम की सश्लिष्ट परम्परा की कहानी कहते है. हम हमारी इस बहुमूल्य धरोहर को कितने सस्ते मूल्य पर बेचने के लिए तत्पर हो गए हैं ? यदि इस पक्ष पर तनिक रुक कर हम आत्मावलोकन कर सकें और आत्म-परिष्कार की प्रक्रिया का पुनः शुभारम्भ कर सकें तो इसमें सन्देह नही कि पतन एवं विघटन की जिस दिशा में हम आंखे मून्द कर दौड रहे हैं, उससे विरत होकर हम हमारी संस्कृति के राजमार्ग पर पुनः लौट सकेंगे और अभ्युदय के उस पथ पर अग्रसर हो सकेंगे, जिसकी ओर हमारे ऋषियो, महर्षियों, सन्तों और गांधी, विनोबा जैसे चिन्तकों ने इंगित किया है.

चुनाव मैदान से हटे :

सन् 1951-52 में सहाड़ा निर्वाचन क्षेत्र की आदिवासी जनता ने तेजावत जी

को विधानसभा के लिए उक्त क्षेत्र से चुनाव में खड़े होने के लिए अत्यधिक आग्रह किया. यद्यपि श्री तेजावत ने सक्रिय राजनीति में भाग लेने के लिए अनिच्छा प्रकट की, किन्तु जनता के असीम स्नेह के आगे उन्हें झुकना पड़ा और उन्होंने चुनाव के प्रत्याशी के रूप में अपना नाम दे दिया. इस क्षेत्र से कांग्रेस ने किसी अन्य व्यक्ति को खड़ा करने का निश्चय कर लिया था. तेजावत जी के मैदान में आ जाने से उसके लिए संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई. इसमें तो किसी को तनिक भी सन्देह नहीं था कि तेजावत जी के मैदान में रहते चुनाव में किसी भी व्यक्ति के लिए जीतना सम्भव नहीं होगा तेजावत जी भारी बहुमत से जीतते, किन्तु कांग्रेस के निहित स्वार्थों ने तेजावत जी जैसे व्यक्ति को तरजीह नही देकर अन्य व्यक्ति को अवसर दे दिया. श्री तेजावत जी की दीर्घकालीन सेवा, त्याग एवं तपस्या को उपेक्षित कर दिया गया. स्थानीय कांग्रेसी नेताओं ने प्रधानमन्त्री पण्डित नेहरू को माध्यम बनाकर तेजावत जी पर दबाव डलवाया कि वे अपना नाम एक कर्मठ कांग्रेस सिपाही के नाते वापिस ले लें. श्री तेजावत जी जैसे अनासक्त, निर्लेप एवं तपस्वी स्वतन्त्रता सेनानी ने पण्डित नेहरू की बात को बिना किसी संकोच के अविलम्ब स्वीकार कर लिया और वे चुनाव मैदान से हट गये.

कुण्ठाओं एवं निराशाओं के आवर्त :

लम्बे ऐतिहासिक संघर्ष के पश्चात् देश स्वाधीन हो गया था. रियासती एवं सामन्ती परिवेश में जन-जीवन के विकास की राह में जो अवरोध थे, वे निशेष हो गए थे. अब यह प्रशासन का दायित्व था कि जनता के जो वर्ग अभी तक अभावग्रस्त जीवन जी रहे थे उनकी स्थिति में परिवर्तन लाने का उपक्रम करता. स्वतन्त्रता सेनानियों के लिए अब संघर्ष करने का कोई कारण नहीं रहा था. उनके लिए अब रचनात्मक कार्यक्रम एवं समाज सुधार के नये आयाम खुल गए थे. तेजावत जी अब अपनी सम्पूर्ण शक्ति इस ओर लगाने को उत्सुक थे. किन्तु प्रश्न यह है कि उनके उन स्वप्नों और कल्पनाओं का क्या हुआ, जो उन्होंने आदिवासी जन-जीवन को नारकीय स्थिति से उबारने को संजाये थे. वे चाहते थे कि आदिवासियों की न्यूनतम आवश्यकताओं की सम्पूर्ति का दायित्व प्रशासन स्वीकार कर ले, और इनके लिए उन्हें आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराये जायें. वे समझते थे कि जब तक आदिवासियों के लिए रोटी, कपड़े और कुटीर की व्यवस्था नहीं होगी, तब तक उनके समाज-सुधार के सारे प्रयास निरर्थक सिद्ध होंगे. ऐसा नही है कि भीलों के साथ अपने लम्बे सहजीवन में उन्होने समाज-सुधार के कार्य हाथ मे नहीं लिए थे, वे इस दिशा में निरन्तर प्रयत्नशील रहे, किन्तु समाज-सुधार के लिए भी मूलभूत भौतिक साधनों की तो अपेक्षा होनी ही है.

किन्तु राजनीतिक दलों के वे नेता एवं कार्यकर्ता जिन्होंने देश की स्वाधीनता के लिए अनेक बलिदान दिये थे, सत्ता की चकाचौंध में भटक गए. उन्होने गांधी जी के सिद्धान्तो एवं दिशा निर्देशों को एक प्रकार से भुला ही दिया. यद्यपि राजनीतिक शिखर पर ऐसे व्यक्ति थे, जो गांधी जी के आदर्शों एवं सिद्धान्तों के प्रति समर्पित थे, किन्तु भारत जैसे बड़े देश के कोने-कोने तक और जन-जन तक उनकी दृष्टि किस प्रकार और कब तक पहुंच सकती थी. उनके साथ ऐसे कार्यकर्ताओं की एक विराट सेना की भी आवश्यकता थी, जो निस्वार्थभाव से देश के सर्वांगीण विकास के लिए उसी प्रकार अपना सब कुछ होम देते, जैसा उन्होंने स्वाधीनता के युद्ध में किया था. स्पष्ट है कि यह नहीं हो सका.

सत्ता एक निर्मम स्वामिनी की भांति व्यवहार करती है. यह व्यक्ति के चरित्र, शील एवं दृष्टि में आमूलचूल परिवर्तन कर देती है. सत्ता के मादक प्रवाह से वही व्यक्ति बच सकता है, जिसने अपने जीवन में सत्य, अहिंसा, प्रेम एवं करुणा को अंगीकार कर लिया हो, जिसने निस्वार्थ एवं निरपेक्ष जीवन जीने का व्रत ले लिया हो. ऐसे सहस्रों व्यक्ति जिनके लिए सत्ता के कपाट खुल गए थे, वे सत्ता के विभ्रम में खो गए. इसका परिणाम यह हुआ कि देश की स्वाधीनता के 37 वर्ष बाद भी लाखों पद-दलित व्यक्ति जहां के तहां रह गए. यह उन इने-गिने मुट्ठी भर व्यक्तियों का प्रश्न नहीं है, जिनको राजनीतिक कारणों से लाभ पहुंच गया है, सवाल तो उस उपेक्षित, पीड़ित, बुभुक्षित जनता का है, जिसके भाग्य के कपाट अभी तक अवरुद्ध ही हैं. यह प्रत्यक्ष स्थिति है, जिसे कोई भी व्यक्ति सहज में देख सकता है.

श्री तेजावत ने आदिवासी जन-जीवन के उत्थान के जो स्वप्न संजोए थे, जो कल्पनाएं की थी, वे साकार होती नहीं दिखाई दीं. देश के स्वतंत्र होने के 16 वर्ष बाद तक वे हमारे बीच रहे, किन्तु उनके दिल, दिमाग पर अब कदाचित् कुछ कुण्ठाओं एव निराशाओं का विभ्रम छाने लग गया था. उन्होने अनुभव किया कि नई व्यवस्था में दरिद्रनारायण की वह पूछ नही हो रही है, जो होनी चाहिए थी.

भ्रष्टाचार के बढ़ते हुए प्रकोप से भी वे व्याकुल थे. उन्हें यह देख कर आश्चर्य होता था कि आजादी के ये परवाने अब किस ओर जा रहे हैं? तेजावतजी अपनी दृष्टि से सभी का मूल्यांकन करते थे. वे स्वयं प्रचार प्रकाशन से कोसो दूर रहे. न उन्होंने मंत्री बनने की कामना की और न ही वे विधायक एवं सांसद बनना चाहते थे. उन्होने कभी किसी प्रतिष्ठित पद की भी इच्छा नहीं की. वे आजीवन अभावों से जूझते रहे. ऐसे व्यक्ति में निराशा एवं कुण्ठा का संचार होना स्वाभाविक है. किन्तु जैसा पहले कहा

जा चुका है, वे अब आत्मकेन्द्रित होते जा रहे थे, अतः उन्होंने कुण्ठाओं एवं निराशाओं को अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया. वे अपने स्तर पर विषम स्थितियों के निराकरण के प्रयास सदैव करते रहे. निस्सन्देह उनके चरित्र का यह अनूठा, गौरवमय पक्ष है. किन्तु जो सुनहरे भविष्य का चित्र तेजावतजी के मस्तिष्क में उभर आया था, वह देश की आजादी के पश्चात् खंडित हो गया. पूज्य गांधीजी विज्ञान और मशीन के विरोधी नहीं थे, किन्तु वे इनका उपयोग ग्राम-स्वावलंबन के लिए करना चाहते थे. हमारी अर्थ-व्यवस्था का ढांचा ऊपर से आरोपित किया गया जबकि गांधीजी इसे सबसे नीचे के सोपान से प्रारम्भ करना चाहते थे. इसका परिणाम यह हुआ कि हमारे गांवों की 80 प्रतिशत जनता विकास के क्रियाकलापों से अनछुई रह गई. हमने हमारे देश के कलेवर पर विकास के पैबन्द अवश्य लगा दिये हैं, किन्तु उनसे ग्रामीण जनता का बिलराव ही अधिक हुआ. भोले-भाले ग्रामीण इन विकास के टीलों की ओर इस प्रकार दौड़े जिस प्रकार दीपक की ओर पतंगे झपटते हैं. फलस्वरूप हमारे गांव विकलांग हो गए. पारंपरिक उद्योग क्षत-विक्षत हो गए.

तेजावतजी का सारा जीवन गांवों में बीता था. वे इस विपर्यय की स्थिति को अच्छी तरह समझते थे. वे अपने अन्तरंग साथियों से इस सम्बन्ध में चर्चा भी करते थे. किन्तु इस चक्र को विपरीत दिशा की ओर घुमाना उनके बूते की बात न थी. यह किसी भी एक व्यक्ति के बस की बात हो भी नहीं सकती थी. अस्तु, तेजावतजी एवं अन्य गांधीवादी व्यक्ति इस स्थिति से खिन्न तो थे, किन्तु उन्होंने इसे प्रभु की इच्छा मानकर स्वीकार कर लिया. उनकी व्यथा के मौन स्वर उस समय और भी मुखरित हो उठते थे कि जिस आदिवासी समुदाय के लिए उन्होंने आजीवन संघर्ष किया, उसके अभ्युदय के चिह्न परिलक्षित नहीं हो रहे थे. किन्तु फिर भी उन्होंने अपने संघर्ष को निष्फल नहीं माना. वे लाखों आदिवासियों की चेतना को जगा चुके थे, साथ ही वे आदिवासियों के उत्पीड़न और शोषण की ओर सत्ताधीशों का ध्यान आकर्षित कर चुके थे. एक व्यक्ति के लिए यह उपलब्धि किसी तरह नगण्य नहीं कही जा सकती.

अतः उनको इस बात का सन्तोष था कि अपने जीवन में उन्होंने आदिवासी वर्ग के लिए जो कुछ किया, उससे अधिक वे नहीं कर सकते थे. नितान्त साधनहीन परिवेश में रहते हुए, नित नई बाधाओं से जूझते हुए उन्होंने आदिवासी समाज की एकता के बल पर जो क्रांति की, वह सभी दृष्टियों से सराहनीय थी.

उन्होंने स्वयं के लिए कभी कुछ नहीं चाहा; वे आजीवन देते ही रहे, अपना सब कुछ देते रहे. उनको प्रभु ने मानव शरीर देकर इस पृथ्वी पर भेजा, उसका पूरा-पूरा

उपयोग उन्होंने दलित बन्धुओं की सेवा में अर्पित करके अपना ऋण चुकाया. अब उनकी पार्थिव काया का प्रयोजन समाप्तप्राय था. किसी प्रकार की शारीरिक व्याधि भोगे बिना उनकी चेतना दिनांक 5 दिसम्बर 1963 को चिदानन्द ब्रह्म की विराट चेतना में विलीन हो गई. इस प्रकार एक महान् जन नेता हमसे सदा-सदा के लिए विदा हो गए. किन्तु उनके अधूरे छोड़े गए कार्यों को पूरा करने की प्रेरणा उनकी यश काया हमें सदा देती रहेगी.

श्री मोतीलाल तेजावत के एकमात्र आत्मज श्री मोहन लाल तेजावत को अपने पिता के आदर्शों की थाती विरासत में मिली है. वे स्वयं एक स्वतन्त्रा सेनानी हैं. उन्होंने अपने पिता के चरण चिह्नों का अनुसरण करते हुए 1938 के प्रजामण्डल आन्दोलन एवं 1942 के "भारत छोड़ो" आन्दोलन मे कारावास की सजा भोगी. सम्प्रति वे रचनात्मक कार्य एवं समाजसेवा में संलग्न हैं.

नवम् अध्याय

कर्मवीर तेजावत - एक रेखांकन

श्री तेजावत जी के कर्मनिष्ठ व्यक्तित्व की विविध झाकियों के दर्शन करना एक सुखद अनुभूति है मंझला कद, गेहुंआ रंग, दाढ़ी और जटा जूट से मण्डित भव्य मुख-मण्डल, सहज स्मित से उत्फुल्ल बड़े-बड़े आकर्षक नयन, जिसमे आत्म-विश्वास, दृढ़ता, संकल्प शक्ति के साथ ही करुणा, मृदुता, आत्मीयता एवं निर्मल प्रेम की चटुल भाव-लहरियां स्फुरित होती रहती थीं. व्यक्तित्व में एक ऐसा दुर्निवार आकर्षण जो सहज ही सामने वाले को स्नेह के झीने तन्तुओं से बांध लेता था. मोटी खादी की धोती और कुर्ता धारण किये और हाथ में एक दण्ड लिए वे बाह्य एवं आन्तरिक सादगी एवं निर्मलता के मूर्तिमन्त विग्रह प्रतीत होते थे. उनके व्यक्तित्व में एक ऐसी दृढ़ता परि-लक्षित होती थी जैसे अपने सिद्धांतों एवं लक्ष्यों के प्रति पूर्णतः समर्पित व्यक्ति के चरित्र में दिखाई देती है. किन्तु वह दृढ़ता कठोरता का पर्याय नहीं थी. व्यक्ति की व्यथा एवं संकट को देखकर उनका मानस अत्यन्त मृदुल और करुणार्द्र हो उठता था. दलित वर्ग के उत्पीड़न को देखकर उनके व्यक्तित्व के समस्त गुण एक बारगी सजग हो उठते थे. सेवा एवं करुणा के जिस पथ को उन्होने पकड़ लिया, उससे फिर कभी

वे विरत नहीं हुए. शताब्दियों से सर्वाधिक उत्पीड़न एवं शोषण के शिकार हुए विपन्न आदिवासियों के अभ्युदय का लक्ष्य एक बार उन्होंने निर्धारित कर लिया तो फिर वे प्रबल आघातों एवं अवरोधों के बावजूद अपनी राह से पीछे नहीं लौटे. साहस एवं स्वाभिमान सदैव उनके सम्बल रहे.

अन्याय एवं अत्याचार से वे कभी समझौता करने वाले नही थे. ऐसी स्थिति में उनका संवेदनशील हृदय विद्रोह के लिए तत्पर हो उठता था. नितान्त साधनहीन होते हुए भी उन्होंने कई सामन्ती रियासतों को उनके कुकृत्यों के लिए ललकारा और दीर्घ-कालीन अहिंसक संघर्ष के पथ पर चल पड़े. निरन्तर एकाकी नेतृत्व देते हुए उन्होंने जो बीड़ा उठाया, वह साहस का अप्रतिम एवं ज्वलन्त उदाहरण है.

उनके व्यक्तित्व की विशालता का परिचय इसी बात से मिलता है कि उन्होंने लक्षाधिक आदिवासी जन-जीवन के साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर लिया. वे आदि-वासियों के साथ घुलमिल कर एकरस हो गए. आदिवासी उनको अपना पिता, देवता सभी कुछ मानते थे. उनकी छोटी से छोटी आज्ञा का पालन करना वे अपना परम कर्तव्य समझते थे. वे आदिवासी जीवन की प्रत्येक धड़कन को पहचानते थे, अतः वे विशाल आदिवासी परिवार के अंग बन गये.

वे आत्म-प्रशस्ति और स्वार्थ से कोसों दूर रहते थे. उन्होंने समस्त सुविधाओं को तिलांजलि दे दी और समझबूझ कर विपन्नता का वरण कर लिया. उनका अस्तित्व पद-दलितों को ऊपर उठाने के महान् उद्देश्य के लिए पूर्णतः समर्पित हो गया.

उनकी सफलता का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है कि लाखों आदिवासी उनके नेतृत्व की छत्रछाया में एक हो गये. यह एकता इतनी दृढ़ थी कि प्रचण्ड दमन के समक्ष भी वह अमिट एवं अजेय रही. इस एकता को ध्वस्त करने के अनेक प्रयास किये गये, किन्तु वे पूर्णतः विफल रहे.

आदिवासी नवजीवन की दयनीय स्थिति की ओर उन्होंने आदिवासियों का ध्यान केन्द्रित कर उनकी चेतना को जागृत किया. उनके उद्बोधन और सूझबूझ के चमत्कार से आदिवासी उठ बैठे और कठिन संघर्ष के लिए तैयार हो गए. यह तेजावत जी की मेधा-शक्ति का अद्भुत उदाहरण है.

तेजावत जी महात्मा गांधी के सत्य एवं अहिंसा के सिद्धान्तों के प्रबल समर्थक थे. उन्होंने भील-जाति जैसी युद्ध-जीवी जाति के लाखो व्यक्तियों को अहिंसक आंदोलन

के सांचे में ढाल दिया और रियासतों द्वारा नृशंस हत्याकांडों का सहारा लेने के बावजूद वे शान्त बने रहे. पारस के स्पर्श से लोहा सोना बन गया. "एकी" आन्दोलन में उन्होंने साधन और साध्य की पवित्रता का सदा ध्यान रखा.

तेजावत जी को महत्वाकांक्षा छू तक नहीं गई थी. इसीलिए वे प्रत्येक बिन्दु को आदिवासियों के सामने स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करते थे. वे अपने हृदय की निर्मलता और स्वार्थहीनता से सामने वाले के हृदय को तुरन्त छू लेते थे. वे उन पर अपनी विश्वसनीयता की अमिट छाप डाल देते थे. तर्क, कुतर्क एवं भ्रमजाल से वे सदैव दूर रहते थे.

तेजावत जी वैधानिक तरीकों में विश्वास करते थे. न्याय को हाथ मे लेकर संदेह एवं विश्वास का वातावरण बनाना वे कभी पसन्द नहीं करते थे. इसीलिए आन्दोलन के प्रारम्भ में उन्होंने किसानों की मांगें महाराणा के सामने रखना उचित समझा. वे नैतिकता एवं मर्यादा की शक्ति को समझते थे.

तेजावतजी सत्य के पुजारी थे. उन्होंने आदिवासियों को लाभ पहुंचाने की दृष्टि से कभी असत्य का सहारा नहीं लिया. उनका संघर्ष सत्य एवं न्याय के लिए था.

उन्होंने लाखों आदिवासियों के अभ्युदय का प्रश्न अपने हाथ में लिया. यह एक महान् दायित्व था. इस दायित्व-बोध को उन्होंने सदैव अपनी दृष्टि मे रखा. उन्होंने जीवन की सभी सुख-सुविधाएं भुला दी. प्रकाश-स्तम्भ की तरह आदिवासी जन-जीवन का उत्थान निरन्तर उनका लक्ष्य बना रहा. लक्ष्य-प्राप्ति को ही उन्होंने प्रभु की उपासना मानी. इस दृष्टि से प्रभु के आशीर्वाद की वे सदैव कामना करते रहते थे.

श्री तेजावत न केवल स्वयं निर्भीक थे, किन्तु उन्होंने बड़ी संख्या मे अपने अनुयायियों में विश्वास, साहस एवं उत्साह का संचार किया. फलस्वरूप आदिवासी भी अपने संघर्ष से कभी विचलित नहीं हुए, वे अडिग साहस के साथ अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित रहे.

श्री तेजावत को अपने संघर्ष से विरत करने के लिए अधिकारियों ने भ्रष्टाचार के जाल बिछाये. किंतु वे तो स्वार्थ एवं लोलुपता से कोसों दूर रहने वाले व्यक्ति थे. उनका निष्कलुष, निर्मल जीवन इस प्रकार के कारनामों, से कभी पंकिल नहीं किया जा सकता था.

श्री तेजावत ने अनेक वर्षों तक एक परिव्राजक का जीवन जिया. वे दुर्गम बीहड़,

पर्वतीय वनखण्डों में विकट परिस्थितियों में वर्षों तक निरन्तर विचरण करते रहे. यह उनकी संकल्प-शक्ति और शारीरिक क्षमता की पराकाष्ठा थी. कोई अन्य व्यक्ति ऐसी दुर्दमनीय परिस्थितियों में टूट जाता, किन्तु तेजावतजी ने इन संकटों को हंसते-हंसते सह लिया और वे अपने कर्मपथ पर अग्रसर होते रहे.

तेजावतजी आदिवासियों के अघोषित बादशाह, देवता सभी कुछ थे. आदिवासियों ने उनको अपने हृदय-सिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया. तेजावतजी आदिवासियों की भावनाओं, उच्छ्वासों, पीड़ाओं और खुशियों के साथ इस प्रकार एकरस हो गए कि उनका भिन्न अस्तित्व नहीं रह गया.

तेजावतजी ने "एकी" आन्दोलन को न केवल राजनीतिक रंग ही दिया, किन्तु उन्होंने उसे धार्मिक एवं सामाजिक स्वरूप भी प्रदान किया. आदिवासियों के लिए "एकी" धार्मिक एवं सामाजिक आवश्यकता थी. वे "एकी" भंग करने को भगवान की आज्ञा का उल्लंघन मानते थे, साथ ही उनके लिए सामाजिक बहिष्कार से बचने के लिए भी "एकी" में रहना अनिवार्य था. तेजावतजी के बौद्धिक विलास का यह एक श्रेष्ठ उदाहरण है.

श्री तेजावत ने आदिवासियों में समाज-सुधार का भी अभियान चलाया. उन्होंने भीलों में व्याप्त अन्ध-विश्वास और कुरीतियों के उन्मूलन के प्रयास किये, साथ ही उन्हें मांसाहार एवं मदिरापान से विरत कर शुद्ध, सात्विक जीवन अंगीकार करने की प्रेरणा दी.

श्री तेजावतजी का दृष्टिकोण सदैव व्यापक रहा. वे संकुचित उद्देश्यों को कभी महत्व नहीं देते थे. हैदराबाद में आर्य समाज के द्वारा छेड़े गए आन्दोलन में वे इसलिए सम्मिलित होना चाहते थे कि देश में अन्याय कहीं भी हो, प्रत्येक देश-भक्त को उसके विरुद्ध आवाज उठानी चाहिए तथा आन्दोलन में सहयोग देना चाहिए.

देश की स्वाधीनता के संघर्ष में भी वे आगे रहे. मेवाड़ प्रजामण्डल द्वारा छेड़े गए, सत्याग्रह-आंदोलन में तथा 1942 के "भारत छोड़ो आन्दोलन" में उन्होंने सक्रिय भाग लिया. उन्होंने जीवन का अधिकांश भाग अज्ञातवास, कारावास एवं नजरबन्दी की अमानवीय परिस्थितियों में व्यतीत किया. उन्होंने लम्बे जेल जीवन को सहर्ष स्वेच्छा से अंगीकार किया.

तेजावतजी मानवीय सम्बन्धों के कुशल पारखी थे. उनके सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति उनका स्नेहभाजन बन जाता था, यहां तक कि उनके साथ रहने वाला

पुलिस का सिपाही भी स्नेह के इस मुक्त-वरदान से वंचित नहीं रहा. वे साम्प्रदायिकता, जाति-पांति एवं ऊंच-नीच के क्षुद्र भेद-भाव से सदैव ऊपर रहे.

देश की स्वाधीनता के उषाकाल में उनके निरन्तर गतिशील जीवन-चक्र ने मोड़ लिया और जीवन के संध्याकाल में उन्होंने अपनी दृष्टि धीरे-धीरे आत्मकेन्द्रित कर ली. उन्होंने इस सत्य को पहचान लिया कि जन-जन के हृदय में आसीन महाशक्ति के दर्शन करना और स्वयं के हृदय में स्थित महिमामयी शक्ति के साथ साक्षात्कार करना तत्वतः एक ही बात है.

तेजावतजी अपरिग्रह के जीवन्त स्वरूप थे. उनकी आवश्यकताएं न्यूनतम थीं. वे सभी प्रकार के व्यसनों से दूर रहे वे कठिन से कठिन परिस्थितियों में जीवनयापन करने के अभ्यस्त हो गए थे. क्षुद्र स्वार्थों के लिए उन्होंने अपने आदर्शों का कभी बलिदान नहीं किया. वे निरन्तर आर्थिक संकटों से जूझते रहे, किन्तु इससे वे कभी विचलित नहीं हुए. उन्होंने स्वयं के लिए कभी कुछ नहीं चाहा. वे आजीवन देते ही रहे.

श्री तेजावत का व्यक्तित्व उनके जीवन के जीवन्त, मार्मिक, करुण एवं चित्रोपम प्रसंगों की गाथा प्रस्तुत करता है. दुख-दर्द की करुण संवेदनाओं से भीगी हुई ये झांकियां एक ऐसे व्यक्तित्व का रूपांकन करती है, जो शोषित एवं दलित वर्ग को अपना भगवान समझता था. उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन दरिद्रनारायण की सेवा के लिए अर्पित कर दिया. कर्म की महायात्रा में विसर्जित हुए मानव का यह स्मृति-चिह्न हमारी धरोहर है.

श्री मोतीलाल तेजावत के बहुमुखी व्यक्तित्व का आकलन आंशिक रूप में ही सम्भव है, समग्र रूप में नहीं. ये कुछ पंक्तियां उनकी पावन स्मृति को अत्यन्त विनम्रतापूर्वक समर्पित है.

ऐसे तपःपूत, निस्संग कर्मवीर को शत-शत नमन.

दशमं अध्याय

भील जाति – अतीत एवं वर्तमान

प्राचीन सन्दर्भ

भील देश के प्राचीनतम निवासियों में से हैं. प्राचीन संस्कृत साहित्य में "निषाद" शब्द का प्रायः उल्लेख हुआ है. "यक्ष-निरुक्त" में "निषाद" शब्द भील के लिए ही प्रयुक्त हुआ है. रामायण एवं महाभारत में भी "निषाद" शब्द का प्रयोग हुआ है. महर्षि वाल्मीकि को भी जाति से भील ही माना गया है.

पुराणों में उल्लेख हुआ है कि भील स्वयंभू मनु की वंश परम्परा में अंग के पुत्र वेन की जंघा से उत्पन्न हुए थे. वेन निस्संतान थे, अतः उन्होंने अपनी जंघा रगड़ कर एक कुरूप पुत्र उत्पन्न किया. वह "निषाद" कहलाया. कुछ विद्वान महादेव से भीलों की उत्पत्ति मानते हैं. महाभारत में आदि पर्व में निषाद बालक एकलव्य की कथा का दक्षिणी राजस्थान के भील बड़े गर्व एवं सम्मान के साथ वर्णन करते हैं.

राजस्थान की भील संस्कृति एवं इतिहास के बारे में वैदिक युग से 7वीं शताब्दी

के समाप्ति-काल तक बहुत ही कम सामग्री उपलब्ध होती है, उससे भील जीवन एवं संस्कृति पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता. किन्तु भील जाति इतनी प्राचीन है कि 500वीं सदी ई. पू. में भी ये प्रजाति के रूप में विद्यमान थी. छठी शताब्दी के आस-पास "कथा सरित्सागर" में "भील" शब्द का उल्लेख हुआ है, जिसमें भील मुखिया द्वारा विन्ध्याचल के शासक का कड़ा मुकाबला करने का सन्दर्भ मिलता है.

सन् 626 ईस्वी में गुहिलोतों की वंश परम्परा में चतुर्थ ईडर के शासक नागादित्य द्वारा भीलों की सहायता से उदयपुर के समीप नागदा की स्थापना का उल्लेख मिलता है. अरावली की पर्वतमालाओं में भील प्राचीनतम निवासी थे. वे बाद में आर्यों द्वारा गहनतम वन-खण्डों में धकेल दिये गए. किन्तु इस प्रागैतिहासिक काल से सम्बन्धित भील जीवन का विशेष उल्लेख प्राप्त नहीं है.

राजस्थान के दक्षिणी-पूर्वी भाग में अरावली की पर्वत शृंखलाओं से भील वेदों के समय से रहते आये हैं, यद्यपि उनके बारे में बहुत ही अल्प जानकारी उपलब्ध है. आर्य जाति के पूर्वजों ने पश्चिमी एवं मध्य भारत के मैदानों में आकर आदिवासियों को उनके निवास स्थानों से हटा दिया और उनको पर्वतीय क्षेत्रों के बीहड़ वनों में खदेड़ दिया. इससे स्पष्ट हो जाता है कि वे पहले से यहाँ रहते थे.

भारतीय संस्कृति और सभ्यता को समुन्नत करने में भील आदिवासियों का योग महत्वपूर्ण रहा है. सांस्कृतिक सम्पर्क के कारण भीलों की परम्परागत जीवन शैली में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है, फिर भी बाह्य संस्कृति के प्रभाव से उनका जीवन सर्वथा अप्रभावित भी नहीं रहा. सामान्यतः भील संस्कृति आज भी परम्पराबद्ध है. उसके परिवर्तन की गति बहुत ही सीमित है.

भील राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र एवं मध्यप्रदेश के बड़े भू-भाग में फैले हुए हैं. टॉड के अनुसार भील दक्षिणी पूर्वी राजस्थान के मूल निवासी थे. उनको पराजित करने के पश्चात् क्षत्रियों ने अनेक राज्य स्थापित किये. मेवाड़ राज्य सूर्यवंश की गुहिलोत शाखा के क्षत्रियों द्वारा शासित था. गोहा या गुहिल से गुहिलोत कहलाए. छठी शताब्दी में गुहिलोत क्षत्रिय ईडर के भीलों के साथ रहते थे. उस समय ईडर पर मंडलिका नाम के भील सरदार का राज्य था.

गुहिल के बाद आठवीं पीढ़ी में बापा का जन्म हुआ. वह तेजस्वी एवं वीर क्षत्रिय था. उसे राजा बनाने में भील सरदारों का बड़ा सहयोग रहा. टॉड के अनुसार नये राजा के ललाट पर अपने रक्त से तिलक लगाने का सम्मान भील को ही प्राप्त हुआ.

था. राजा के दायें-बायें खड़े भीलों में से एक उदयपुर के पास ऊन्दरी का था तथा दूसरा ओगना पानरवा के सोलंकी वंश का था. ऊन्दरी और ओगना का भीलों को अनेक पीढ़ियों से बापा के वंशजों का राजतिलक करने का विशेषाधिकार स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक प्राप्त था. टॉड ने लिखा है कि ओगना का भील सरदार राजकुमार के मस्तक पर टीका लगाने के साथ-साथ उसे अपनी भुजाओं में लेकर सिंहासन पर बिठाता है और ऊन्दरी का भील आरती, पवित्र अन्न एवं तन्दुल लिए रहता है.

राजपूत शासकों ने अपने राज्य के कुछ भाग भीलों से प्राप्त किये तथा उन्हें राज्याभिषेक के समय सहयोगियों के रूप में रखकर सम्मानित किया. राजपूतों ने उनको पट्टेदारों के रूप में नियुक्त कर के अपने राज्य को सुरक्षित बनाया. 16वीं शताब्दी में महाराणा प्रताप ने सम्राट अकबर के साथ भीलों की सहायता से 25 वर्ष तक युद्ध किया. उस समय से मेवाड़ राज्य के राज्य-चिह्न में चित्तौड़गढ़ के किले के एक ओर महाराणा प्रताप तथा दूसरी ओर भील सरदार रहे हैं.

मेवाड़ की तरह कुशलगढ़ के राज्य-चिह्न में भी एक ओर क्षत्रिय तथा दूसरी ओर भील दिखाई देता है. यहां भी वंश परम्परा से राजकुमार के राजतिलक के समय भील सरदार द्वारा अपने-रक्त से तिलक करने की प्रथा चली आ रही थी. राजस्थान एवं गुजरात की अन्य रियासतों में भी आदिवासियों का भूभाग पर प्रभावशाली नियंत्रण था. राजपूतों ने आक्रमण करके बलात् आदिवासियों को हटाया और अपने राज्यों की स्थापना की.

डूंगरपुर और बांसवाड़ा राज्यों के साथ भी इसी प्रकार भीलों के आख्यान जुड़े हुए हैं. इनमें भीलों की जनसंख्या 60 प्रतिशत से भी अधिक है. उदयपुर जिले में आदिवासियों की जनसंख्या 28.6 प्रतिशत है.

यह एक स्वीकृत तथ्य है कि भारतीय आदिवासियों का एक सामाजिक और राजनीतिक ढांचा था. ये युद्धप्रिय लोग थे, किन्तु अन्य जातियों का दबाव पड़ने से ये सुरक्षा की दृष्टि से वन-प्रदेशों में चले गए. कतिपय क्षेत्रों में वे दीर्घकाल तक अपना वर्चस्व स्थापित रखने में सफल रहे और अन्य क्षेत्रों में पराजित होने पर भी राजनैतिक सहयोगी के रूप में इनका महत्व बना रहा.

भील एवं महाजन संपर्क :

जिस प्रकार भीलों और राजपूतों में सम्पर्क स्थापित हुए, उसी प्रकार व्यवसायिक जातियों के साथ भी भील जाति के सम्पर्क बढ़े. ये संबंध वस्तुओं और सेवाओं के लेन-देन

पर आधारित थे. राजस्थान के आदिवासी क्षेत्रों में महाजन व्यापार एवं लेन-देन करने हेतु बस गये. इन व्यापारियों ने आदिवासियों को अपने सम्पर्क एवं आदान-प्रदान के द्वारा इस प्रकार प्रभावित कर दिया कि ये आदिवासी क्षेत्र के लिए अपरिहार्य बन गये. इन महाजनों की तुलना में राजकीय उपक्रम फीके पड़ गए. महाजन वर्ग ने आदिवासियों में यह विश्वास उत्पन्न कर दिया कि वे अपने स्वार्थ के लिए नहीं किन्तु उनकी सेवा के लिए लेन-देन करते हैं. इन लोगों ने यह दावा भी किया कि संकटकाल में भी वे ग्राम समुदाय का अभिन्न अंग बन कर सेवा करते रहे हैं. जागीरदारों ने आदिवासियों को दासता एव कठोरता से नियन्त्रण मे रखा तो महाजनों ने उनको आर्थिक विनिमय एवं ऋण-व्यवस्था के द्वारा अपने प्रभाव में रखा. इन दोनों ही प्रकार के नियन्त्रण का उद्देश्य आदिवासियों से द्रव्य, भूमि, उपज एवं सेवाएं प्राप्त कर अधिक धन एवं ब्याज कमाना था.

भीलों की जनसंख्या :

1961 की जनगणना के अनुसार भीलों की संख्या राजस्थान मे 9,08,768, गुजरात में 11,24,282, महाराष्ट्र में 5,75,022, और मध्य प्रदेश में 12,29,930 थी. 1971 की जनगणना के अनुसार राजस्थान मे भीलों की संख्या 13,96,026 थी. कुल भीलों का 23.68 प्रतिशत राजस्थान मे केन्द्रित है, जिसमें उदयपुर, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, चित्तौड़गढ़ जिलों के आदिवासी क्षेत्र सम्मिलित हैं. पश्चिमी राजस्थान में जालोर, सिरोही, बाड़मेर एवं जैसलमेर जिले हैं, जहां आदिवासियों का प्रतिशत 10 है तथा पूर्वी राजस्थान के कोटा एवं झालावाड़ जिलों का प्रतिशत 5.6 है और मध्य राजस्थान का प्रतिशत 11.37 है.

अर्थव्यवस्था एवं सम्बद्ध समस्याएं :

भील समाज की प्राचीन अर्थ-व्यवस्था एवं वर्तमान अर्थ-व्यवस्था में बड़ा अन्तर है. प्रारम्भिक लूट खसोट के जीवन को छोड़ कर अधिकांश भील अब कृषि पर अवलम्बित हो गए हैं. वे भूमि के स्वामी के रूप मे या कृषि-मजदूरों के रूप में खेती का कार्य करते हैं. प्रायः वे सभी परिवार, जो कृषि पर आश्रित हैं, कुछ न कुछ गौण धन्धा भी करते हैं. सहायक धन्धों में पशुपालन एवं मुर्गीपालन मुख्य हैं. फसल का समय नहीं होने पर जब वे अवकाश में होते हैं तो वे वनों, सड़कों या निर्माण कार्यों में संलग्न हो जाते हैं. कुछ वनों की उपज अथवा शिकार से अपना निर्वाह करते हैं. वन-प्रदेश के भील लकड़ी, शहद, लाख, गोंद, वनौषधियां, जंगली फल, कन्द मूल एवं कतिपय वृक्षों की पत्तियां बेच कर या कोयला बनाकर जीविकोपार्जन करते हैं. कुछ

शिक्षित भील युवक अध्यापक, चपरासी, ग्राम-सेवक या पोस्टमेन के पदों पर कार्य करने लगे हैं.

इन सब यत्नों के बावजूद भीलों की आर्थिक स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हुआ है वे गरीबी और कर्जदारी में डूबे हुए हैं, जिनके पास कृषि के लिए भूमि नहीं है वे मजदूरी के लिए शहरों में चले गए हैं. गरीबी के कारण या ऋण नहीं चुका पाने के कारण बहुत से भील एवं उनके परिवार के सदस्य बंधक के रूप में मजदूरी करते हैं. भीलों के विभिन्न वर्गों में कृषि का विकास असमान रूप से हुआ है. वर्तमान में जमीन की मांग बढ़ जाने से भी बहुत से भीलों के हाथ से जमीन चली गई है. अधिकांश भीलों के पास छोटे-छोटे भू-खण्ड हैं, जो उनकी स्वयं की वर्ष भर की आवश्यकता के लिए भी पर्याप्त नहीं है. अधिकांश भील ऐसे दुर्गम पर्वतीय स्थलों पर निवास करते हैं, जहां उन्हें उनकी आवश्यकतानुसार अधिक भूमि देना संभव भी नहीं होता. इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी गरीबी अक्षुण्ण बन गई है. उनकी गरीबी और विपन्नता के कुछ अन्य कारण भी हैं. वे अलग-अलग एकान्त टीलों पर झोपड़ियां बना कर रहने के अभ्यस्त हैं, उनमें मदिरापान एवं अन्य सामाजिक कुरीतियां भी विद्यमान हैं. ये विकृतियां उन्हें निरन्तर गरीबी का जीवन जीने के लिए विवश करती हैं. इसके अतिरिक्त जब भी सूखे या बाढ़ की स्थिति हो जाती है, तो उनका जमीन पर किया गया पूरा श्रम व्यर्थ चला जाता है और जो कुछ वे खेती के द्वारा उत्पन्न करते हैं, वह कभी न चुकने वाले ऋण के एवज चला जाता है. राजस्थान, गुजरात और मध्य प्रदेश के भीलों की स्थिति में विशेष अन्तर नहीं है.

अपनी कृषि उपज के सहारे भील वर्ष के कुछ मास ही व्यतीत कर पाते हैं. यह भी तब संभव होता है, जबकि मौसम अनुकूल रहा हो. सूखे की स्थिति उनके लिए अत्यन्त कष्ट-साध्य होती है. वे उस समय मात्र अपने श्रम पर ही निर्भर रहते हैं. यदि मजदूरी समय पर नहीं मिली तो उनके लिए भुखमरी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है.

जिन भीलों ने अपनी भूमि कर्ज लेकर महाजन के यहां गिरवी रख दी, वे सामान्यतः कर्ज नहीं चुका पाने के कारण जमीन से ही हाथ धो बैठते हैं. भीलों की यह भी परम्परा रही है कि जब पुत्र का विवाह हो जाता है तो उसे परिवार से अलग कर दिया जाता है और उसे भूमि का एक भाग निर्वाह के लिए दे दिया जाता है. इस प्रकार भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े होते जाते हैं और वे गरीबी को स्थायी रूप से आमन्त्रित कर लेते हैं.

सामान्यतः भीलों की जमीन निम्न श्रेणी की है. वह उर्वरा नहीं है. भीलों के अधिकांश खेत ढलुआ होते हैं, अतः वर्षाकाल में खेत की ऊपरी परत पानी के साथ बह जाती है. जो खेत समतल हैं, उनके साथ यह समस्या नहीं है. भूमि को उपजाऊ बनाने के वैज्ञानिक तरीकों से भी वे अपरिचित हैं. अब कुछ भीलों ने राजकीय सहायता से मेड़बन्दी एवं अन्य तरीके अपनाये हैं.

भीलों की बहुत बड़ी संख्या ऐसे स्थानों में रहती है, जहाँ उनको अधिक कृषि योग्य भूमि देना सम्भव नहीं है. ऐसे स्थानों में अधिकतर चट्टानोंयुक्त पथरीली भूमि होती है, साथ ही ऊंची-ऊंची पहाड़ियों और सघन वन के कारण वहाँ कृषि भूमि प्राप्त करना बहुत कठिन है. वन-वृक्षों को काट कर कृषि के लिए भूमि प्राप्त करना लाभ का सौदा नहीं रहता, क्योंकि ऐसा करने से बहुमूल्य लकड़ी तो जाती ही रहती है, साथ ही वनों का आर्थिक अवमूल्यन भी हो जाता है. इसके अतिरिक्त भील वनों से प्राप्त होने वाली मजदूरी एवं उपज से भी वंचित हो जाते हैं. भील अपने पैतृक स्थानों को छोड़कर अन्य स्थानों पर बसने के लिए भी तैयार नहीं होते. परम्परा एवं भाव-प्रवणता उन्हें अपनी मातृभूमि से बांधे रहती है. यदि कुछ भील अन्य स्थानों पर जाने के लिए उद्यत भी हो जायें तो भी उन्हें अच्छी भूमि दे पाना सरल कार्य नहीं है. भूमि की मांग निरन्तर बढ़ती जा रही है और मांग की तुलना में भूमि की आपूर्ति करना एक दुष्कर कार्य है. ऐसी स्थिति में महत्वपूर्ण कदम यही होना चाहिए कि भीलों की कृषि भूमि को ऋणदाता महाजनों एवं अन्य व्यक्तियों के चंगुल में जाने से बचाया जाय. यद्यपि राज्य सरकार ने आदिवासियों की भूमि को इतर वर्गों को बेचने, रहन रखने एवं किराये पर देने से रोकने के लिए कानून बनाकर प्रतिबन्ध लगा दिया है, किन्तु कानून का अनुपालन कड़ी निगरानी के साथ किये जाने की आवश्यकता है, साथ ही यह भी आवश्यक है कि यह कानून राज्य द्वारा आवंटित भूमि और पैतृक भूमि पर समान रूप से लागू होना चाहिए.

कृषि की उन्नत प्रणाली के प्रति उपेक्षा :

भील जाति सामान्यतः अपनी भूमि की उपज उन्नत विधियों द्वारा बढ़ाने के लिए उत्सुक प्रतीत नहीं होती. भील अपनी पारम्परिक विधियों से जो कुछ मिल जाता है, उसी में सन्तोष कर लेते हैं. अपने सदियों पुराने अन्धविश्वास, अज्ञान एवं अशिक्षा और प्राकृतिक परिवेश पर निर्भरता के कारण वे परम्परागत तरीकों से ही चिपके रहते हैं. इसीलिए उन्नत बीज, रासायनिक खाद, कीटनाशक औषधियां, सुधरे हुए औजार और तकनीकी ज्ञान के प्रयोग द्वारा कृषि करने के प्रयासों में वांछित सफलता नहीं मिल पाई है. वास्तव में उनके पास उपर्युक्त उन्नत तरीके अपनाने के लिए आवश्यक

साधनों का भी नितान्त अभाव है. इसलिए आधे अधूरे प्रयास सफलता के समीप नहीं पहुंच पाते. कदाचित् उनकी कृषि की वर्तमान स्थिति में उन्नत तरीकों का प्रयोग विशेष लाभकारी भी सिद्ध नहीं होगा.

सर्व प्रथम यह आवश्यक है कि भील-जाति को उन्नत कृषि के लिए अभिप्रेरित किया जाय. इसके बिना वे परिवर्तन के लिए तैयार नहीं होंगे. भील परम्परावादी जाति है. जब तक वे पुराने विश्वासों और मान्यताओं से चिपके रहेंगे, तब तक उनमें किसी प्रकार के सुधार की अपेक्षा करना उचित नही होगा, किसी भी प्रकार के परिवर्तन के पूर्व आवश्यक वातावरण का निर्माण करना आवश्यक होता है. यह देखा गया है कि भील क्षेत्र में रासायनिक खाद एवं अन्य उपकरण बिना उपयोग के वर्षों तक पड़े रह कर विकृत हो गये हैं. आवश्यक प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन के बिना बेहतर जीवन के सभी प्रयास व्यर्थ सिद्ध होते हैं.

विविध समस्याएं :

भील जाति कृषि की उन्नत तकनीक के प्रति उत्सुक नहीं है, ऐसा कहना अनुचित होगा. यह कहना शायद अधिक सही होगा कि जिन विपरीत परिस्थितियों में वे कृषि-कर्म करते हैं, उनमें उन्नत तकनीक के समावेश की अधिक गुंजायश नही है. जब तक कि उनमें आमूलचूल परिवर्तन न कर दिया जाय, निश्चय ही ऐसा करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है. इस सम्बन्ध में उन समस्याओं पर दृष्टिपात करना उपयुक्त होगा, जो उनकी राह मे बाधक बनती हैं.

सिचाई की समस्या :

सिंचाई का कृषि के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है. उन्नत कृषि के लिए जब तक सिचाई की समुचित सुविधाएं उपलब्ध नही हो, तब तक दूसरे उपाय व्यर्थ सिद्ध होंगे. यह देखा गया है कि आवश्यकता के अनुरूप सिंचाई की व्यवस्था न होने के कारण रासायनिक खाद का प्रयोग अहितकर सिद्ध हुआ है. सिंचाई के साधन पर्याप्त रूप से उपलब्ध न हो तो उन्नत बीजों के द्वारा भी वांछित पैदावार नहीं मिल सकती. भीलों की आबादी ऐसे स्थानों पर है, जहां वे मुख्यतः वर्षा के पानी पर ही निर्भर करते हैं तथा केवल खरीफ की फसल ही ले पाते हैं. जहां जहां सिंचाई की यत्किंचित सुविधाएं उपलब्ध हैं, वहीं रबी की फसल भी ली जाती है. जो फसलें बोई जाती हैं, वे इस प्रकार हैं:—मक्का, चावल, गेहूं, जवार, चना, मूंगफली, रूई, तम्बाकू, उड़द, गन्ना, तिल एवं शाक सब्जी. भील क्षेत्रों में कुएं खुदवाने, उन्हें गहरा करवाने, लिफ्ट सिंचाई की व्यवस्था करने, बांधों का निर्माण

करने तथा पम्प सेट लगाने के प्रयास किये जा रहे हैं. कृषि और कुओं के लिए मुफ्त सहायता भी दी जा रही है, किन्तु सभी भील प्राप्त राशि का समुचित उपयोग नहीं करते. कभी-कभी दी गई आर्थिक सहायता अपर्याप्त सिद्ध होती है. भीलों की बहुत बड़ी संख्या को ऋण एवं तकावी की सुविधाएं इसलिए नही दी जा सकती है कि उनके पास बहुत कम कृषि भूमि है. अपर्याप्त वर्षा के कारण बांध भी विशेष सहायक सिद्ध नहीं होते हैं. भीलों की सबसे बड़ी आवश्यकता सिंचाई के लिए पानी की है. भीलों के खेत बिखरे हुए हैं और ढलान पर होते हैं. ऐसे खेतों पर कुओं से पानी पहुंचाना सम्भव नही होता. शायद यही सबसे बड़ा कारण है कि वे कृषि की उन्नत प्रणाली अपनाने में असमर्थ होते हैं.

खाद की समस्या :

भीलों के पास आम तौर पर अनुत्पादक भूमि है. इसके लिए देशी खाद एवं रासायनिक खाद की नितान्त आवश्यकता होती है. किन्तु भील वैज्ञानिक रूप से कम्पोस्ट खाद तैयार नहीं करते, इस कारण गोबर के उत्पादक अंश नष्ट हो जाते हैं. भीलो को गोबर से वैज्ञानिक रीति से खाद तैयार करने की विधि से खाद तैयार करने की विधि-प्रदर्शित की जाने पर भी वे इस प्रक्रिया मे विशेष रुचि नही लेते. पथरीली जमीन मे कम्पोस्ट खाद तैयार करने के लिए खड्डे खोदने मे भी कठिनाई होती है.

रासायनिक खाद के उपयोग के बारे में अभी तक अधिकांश भीलों को पूरी जानकारी नही है. पानी के अभाव के कारण भी वे इनका उपयोग नहीं कर पाते. वर्षा के पानी के साथ ढलुआ खेतो पर रासायनिक खाद बह जाता है, इस हानि से बचने के लिए वे उसका उपयोग नही करते. रासायनिक खादो के गोदाम खेतो से काफी दूर होते हैं, जहां से उन्हें लाना दुष्कर होता है. निष्क्रिय सहकारी समितियो के कारण उन्हें खाद के परमिट भी नही मिल पाते. रासायनिक खाद के सुविधाजनक वितरण का आदिवासी क्षेत्रों में नितान्त अभाव है.

कृषि उपकरण एवं बीज :

भीलों के द्वारा काम में लाये जाने वाले कृषि उपकरण आम तौर से पुराने किस्म के होते है. इस दिशा में अभी सुधार नही आ पाया है. नये वैज्ञानिक उपकरण उनकी पहुंच के बाहर है. इसका प्रभाव कृषि उपज पर भी पड़ता है. यद्यपि कहीं-कहीं नये उपकरण दिये गये हैं, किन्तु ऐसे उदाहरण नगण्य है. नये उपकरणों के प्रति भीलो मे उत्साह परिलक्षित नहीं होता. ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि नये उपकरण

पथरीली भूमि के लिए उपयोगी नहीं होते. दूसरी कठिनाई यह भी है कि नये उपकरणों की मरम्मत के कोई साधन उनके पास नही हैं.

उन्नत बीजों की आपूर्ति के बारे में भी ग्राम तौर से यह कठिनाई है कि वे उन्हें समय पर नही मिल पाते और वे साहूकार से जैसे मिल पाते हैं, ले लेते हैं. उन्नत बीजों के साथ जब तक दूसरी सुविधाएं उपलब्ध नही हो पातीं, तब तक मात्र उन्नत बीजो से उपज में वृद्धि नही हो पाती.

भीलों तक उन्नत कृषि से सम्बन्धित तकनीकी जानकारी भी नही पहुंच सकी है, न वे कीटनाशक औषधियों का उपयोग ही जानते हैं.

एक कुचक्र :

कुल मिलाकर भीलों का कृषि-कर्म सभी दृष्टियों से एक कुचक्र में फंसा हुआ है. जबकि आदिवासी क्षेत्र के अनुकूल कृषि की उन्नत प्रक्रिया वहा के जन-जन तक नहीं पहुंचाई जाती और उन्हें सारी सुविधाएं उपलब्ध नहीं कराई जातीं, तब तक उनकी खेती में उत्साहजनक सुधार होने की कल्पना नहीं की जा सकती और न भीलो के रहन-सहन के स्तर में कोई परिवर्तन लाया जा सकेगा. भीलों के परिवेश को दृष्टि में रखकर उनके कृषि-कर्म के लिए समग्र वैज्ञानिक प्रक्रिया का नये रूप से संयोजन आवश्यक प्रतीत होता है.

भीलों के वर्तमान शोचनीय आर्थिक पक्ष का दिग्दर्शन कराने के लिए ही उपर्युक्त पंक्तियां लिखी गई हैं.

नवजीवन के स्वप्न :

श्री मोतीलाल तेजावत ने उन्नत आदिवासी जीवन का जो स्वप्न संजोया था, यदि उसे साकार करना अभिप्रेत है तो इसके लिए हिमालयी प्रयास करने होंगे. यह समस्या अपने अंक में लाखों आदिवासियों के जीवन को समेटे हुए है. आज भील-समाज मानव-सभ्यता के सबसे निचले सोपान पर भी पांव नहीं रख पाये हैं, ऐसी स्थिति मे उनके उद्धार के लिए प्रयास भी निस्सन्देह ऐसे करने होंगे, जो कम से कम उन्हें मानवोचित अहसास एवं स्तर प्रदान कर सकें. इस देश एव विश्व के प्रबुद्ध समुदाय के लिए अन्तरिक्ष जीवन की कल्पना तभी शोभनीय एवं उपयोगी होगी, जबकि वे विश्व के लाखों करोड़ों मानवों के जीवन में आशा के कुछ दीप प्रज्वलित करने में सहायक बनेंगे.

आदिवासी जन-जीवन के समृद्ध सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन की रक्षा करते हुए तथा उनके जीवन में व्याप्त विसंगतियों से जूझते हुए उन्हें नये संकल्पों की दिशा में गतिशील होने के लिए अभिप्रेरित करना होगा. अंध-विश्वास, कुरीतियों और मद्यपान ने उनके जीवन में प्रबल अवरोध उपस्थित किये हैं, इनको उखाड़ कर उनमें नये विश्वास और आशा का संचार करना होगा. उनके नये आर्थिक एवं सामाजिक जीवन का ढांचा इसी आधार पर निर्मित हो सकेगा.

निश्छल मानवीयता के प्रति सहज संवेदनशीलता :

एक ओर आदिवासियों के आर्थिक आधार को सम्बल की अपेक्षा है तो दूसरी ओर उससे भी कहीं अधिक उनके सांस्कृतिक-सामाजिक जीवन के प्रति तथाकथित सभ्य नागरिक के मानस में संवेदनशीलता जागृत करने की आवश्यकता है. आदिवासियों के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को अनुभवजन्य रचनाशीलता के आधार पर आत्मीयता एवं सूक्ष्म दृष्टि से परखने की आवश्यकता है. आदिवासी जीवन को लेकर लिखे गए समाज शास्त्रीय शोध ग्रंथों में इस दृष्टि का प्रायः अभाव रहता है. आदिवासियों के रीति-रिवाज, रहन-सहन, धार्मिक आस्थाओं एवं आर्थिक उपक्रमों के प्रति ऐसी ही संवेदनशीलता के सहारे आगे बढ़ा जाय तो यह एक बेहतर स्थिति होगी, बनिस्पत उसके कि हम उनके सांस्कृतिक-सामाजिक परिवेश के प्रति संवेदनशील हुए बिना उसे झाड़-झंखाड़ समझ कर उस सब पर अतिशय उत्साह के आवेग में बुलडोजर फिरा दें. जंगल के सघन कुंआरे सौंदर्य में मेहनतकश आदिवासियों के बीच खड़े होकर आदिवासी संसार की अछूती भंगिमाओं से परिचित हुए बिना सभ्य नागरिक उन्हें क्या दे सकता है, यह निश्चय ही एक महत्वपूर्ण प्रश्न है. इसके बिना आर्थिक उन्नयन की दिशा में संजोये गये सारे उपक्रम जड़ नहीं पकड़ पायेंगे और व्यर्थ सिद्ध होंगे. आदिवासियों के जीवन-वृत्त, कला, संगीत, साहित्य, नृत्य, इतिहास, मान्यताएं और समाज-व्यवस्था आदि को समझ-बूझ कर ही एक सुदृढ़ आधार का निर्माण सम्भव हो सकेगा.

वनों में फली-फूली इस आदिवासी सभ्यता को हमारे देश के विकृत मानसिकता में पले वर्ग ने पिछड़ी हुई सभ्यता मान लिया है. कहीं-कहीं तो इन आदिवासियों को मानव रक्त के पिपासु बर्बर जंगली जाति के रूप में चित्रित किया गया है, अतः यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि उस आदिवासी जीवन के साथ एक स्वस्थ दृष्टिकोण से उसकी आपदाओं और रस-सौंदर्य के साथ सामंजस्य स्थापित कर आत्मीयता स्थापित कर सकें. हम यह देखने का और समझने का प्रयास करें कि आदिवासी जीवन नगरीय कोलाहल से दूर शान्त, स्नेह-सलिला मंदाकिनी की तरह है, जहां निश्चल जीवन, सामूहिक श्रमशीलता एवं मानवीय सम्बन्धों की ऊष्मा है. एक ओर आदिवासी कला,

संगीत एवं नृत्य की प्राचीन परम्पराओं को संजोकर सुरक्षित रखे हुए हैं, तो दूसरी ओर उनके गीतों में उनका समृद्ध जन-काव्य अभी तक अछूता रह सका है. उनके विश्वास और आस्थाएं इसीलिए सुदृढ़ रही हैं कि वे किसी भी तरह की स्वार्थ-लिप्सा से परे रहे हैं.

वर्तमान में आदिवासियों को अपनी पवित्र मानवीय आस्थाओं के कारण शहरी लोगों के शोषण का शिकार होना पड़ रहा है. सब ओर उनके शारीरिक श्रम का शोषण शुरू हो गया है. आदिवासी कबीलों में सदियों से चले आ रहे अंध-विश्वासों के कारण वैज्ञानिक जीवन-पद्धति में उनका घुलना-मिलना अधिक कठिन हो गया है. तर्क के स्थान पर ये लोग आस्थाओं पर अधिक जीवित रहते हैं और दुर्भाग्यवश इनमें बहुत सी अंध-आस्थाएं भी सम्मिलित हैं.

आदिवासी जीवन के इन अन्तर्विरोधों और उसके दारुण आर्थिक पक्ष को समझ कर नवनिर्माण का ढांचा खड़ा करना होगा. इन आदिवासियों को किस प्रकार लूटा जा रहा है, किस प्रकार वे ठेकेदारों के पास श्रमिक के रूप में दिन-रात काम करते हैं, कितने इन्सान बिना इलाज के सिर्फ झाड़-फूंक और दैवी शक्तियों की मरीचिका में इन जंगलों के अंधेरे में दम तोड़ रहे हैं, इन सबसे आदिवासी जीवन को मुक्त किये बिना नवनिर्माण एक प्रवंचना सिद्ध होगी. कठिनाई यही है कि परिष्कृत शहरी दम्भ के शिकार लोग आदिवासियों की निश्छल मानवीयता के प्रति सहज लगाव महसूस नहीं करते और यही से सारी विकृतियां उद्भूत हो जाती हैं. हमारे सारे प्रयास शिलाखंड पर बिखेरे गए बीजों की भांति विफल हो जाते हैं.

निश्चय ही आदिवासी जीवन के सन्दर्भ में निर्मित समग्र योजनाओं से समझ और सहमति को आधार बनाना होगा. हर आदिवासी व्यक्ति के साथ घनिष्टतम सम्पर्क स्थापित करना होगा. उनकी समस्याओ को उन्हीं के सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पृष्ठभूमि में रहकर उन्हीं से उनके समाधान ढुंढवाने होंगे और उनको स्वीकार करना होगा. ऐसा करने पर किसी भी कार्य में इतनी कठिनाइयां नहीं होंगी, जैसी आज हो रही हैं, फिर वह चाहे सामाजिक क्रान्ति की बात हो चाहे आर्थिक उन्नयन का प्रश्न हो और चाहे स्थानीय भौतिक सुविधाओं की व्यवस्था की बात हो. आदिवासी समाज के विकास के प्रश्न को हाथ मे लेने के पूर्व हमें अपने दृष्टिकोण को इसी परिप्रेक्ष्य में परिवर्तित करना होगा.

राष्ट्रीय चेतना के स्वर :

राजस्थान में राष्ट्रीय चेतना के स्वर उन्नीसवी सदी के पूर्वार्द्ध से ही परिलक्षित

होने लगे थे, जब मराठों के आक्रमण और पिंडारियों की लूटपाट से त्रस्त होकर राजस्थान के नरेशों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ संधियां कर ली थी और अधीनता-सूचक स्थिति का वरण कर लिया था. इन संधियों के फलस्वरूप एक ओर उन सामन्तों में क्षोभ एवं आक्रोश के भाव उदय हुए जिनकी परम्परागत मान-मर्यादा और अधिकारों का हनन हुआ था, तो दूसरी ओर समाज का वह प्रबुद्ध वर्ग भी तिलमिला उठा, जिसे अपनी महान् सांस्कृतिक धरोहर एवं समृद्ध ऐतिहासिक परम्परा पर गर्व था.

यद्यपि अंग्रेज विरोधी स्वर राष्ट्रीय चेतना से युक्त काव्य रचनाओं की प्रवाह परम्परा के रूप में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में ही प्रस्फुटित हुआ था, तथापि 1857 के विप्लव और उसके पूर्व भी उसके चिह्न प्रसिद्ध चारण कवियों की डिंगल रचनाओं में परिलक्षित होते हैं. भरतपुर के जाटों की वीरता, जोधपुर के महाराजा मानसिंह का अंग्रेज विरोधी आक्रोश, डूंगरपुर के महारावल जसवन्त सिंह को राजगद्दी से हटाने पर हुई व्यापक प्रतिक्रिया, जोधपुर में मिस्टर लडलो पर भीमजी राठौड़ द्वारा किया गया आक्रमण, जयपुर में मिस्टर ब्लेक की हत्या जैसी घटनाओं के कारण 1857 से पूर्व राष्ट्रीय चेतना के स्वर चारण कवियों की वाणी में फूट चुके थे. इन चारण कवियों में बांकीदास, गिरधरदान, भोपालदान, नवलजी, लालस मेहुड़ दूलजी आदि प्रमुख हैं. बांकीदास ने ही सर्व प्रथम देशवासियों को एकता के सूत्र में आबद्ध होकर अंग्रेजों का विरोध करने एवं प्रतिशोध लेने के लिए प्रोत्साहित किया.

1857 के विप्लव में जब राजाओं ने अंग्रेजों का साथ दिया तो कतिपय सामन्तों और जनता ने सम्मिलित रूप से अंग्रेजी सेना से लोहा लिया था. 1857 के विप्लव में सक्रिय रूप से भाग लेने वाले वीरों तथा सहयोग देने वाले व्यक्तियों के लिए प्रशस्तिपूर्ण गीत लिखे गए और जिन्होंने अंग्रेजों का साथ दिया उनकी तीव्र भर्त्सना की गई. ऐसे कवियों में सूर्यमल मिश्रण, बांकीदास, सांदूदास, राघोदास, शंकरदास जवानजी आढ़ा, सिंहायच बुधसिंह, बारहठ दुर्गादत्त, आढ़ा जादूराम, आसिया बुधजी, मिलोकदान, आढ़ा चिमनजी, गोपालदास दधवाड़िया, चैनजी बांसूर, लिखमीदान ऊजल, भारतदान आदि उल्लेखनीय हैं. सूर्यमल मिश्रण ने "वीर सतसई" में अंग्रेज विरोधी भावना को अन्योक्तियों एवं वक्रोक्तियों द्वारा मुखरित किया. अंग्रेजों की पराधीनता के कारण उत्पन्न हुए जनक्षोभ को कुछ अन्य कवियों ने भी अपने स्फुट दोहों और सोरठों में अभिव्यक्ति दी केशरी सिंह बारहठ द्वारा लिखे गये सोरठों में यह भावना अपने उदात्त रूप में प्रकट हुई है. लॉर्ड कर्जन द्वारा आयोजित दिल्ली दरबार में सम्मिलित होने हेतु जाते हुए महाराणा फतहसिंह बारहठजी द्वारा रचित "चेतावनी के

घूंघटे" सुनकर राह से ही लौट गए. उनके सुप्त पौरुष को जागृत करने में इस रचना ने तीर का काम किया. इन रचनाओं की बानगी प्रस्तुत है.

पराधीन भारत हुयो
प्यालां री मनवार।
मात्र भोम परतन्त्र हो,
बार बार धिक्कार।
कुसमण देस लूट कर,
ले, ज्यावे परदेस।
राजन चुड़ल्या पहरल्यो,
धरो जनानो भेस।।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध और उसके बाद लिखी गई चारण कवियों की रचनाओं से यह तथ्य स्पष्टतः प्रकट हो जाता है कि अंग्रेजों की सुदृढ़ होती जा रही सत्ता और राजस्थान के नरेशों द्वारा किये गये आत्म-समर्पण के प्रति जन-साधारण की सहानुभूति कभी नहीं रही. अंग्रेजों के बढ़ते हुए वर्चस्व के कारण राजस्थान की जनता को तिहरी गुलामी की चक्की में पिसना पड़ रहा था. जो राजा प्रजा के सुख-दुख में सदैव सहभागी रहते आये थे, वे पराधीन होकर वैभव विलास में डूब गये और प्रजा के शोषण का कारण बन गये. अतः इस स्थिति के प्रति जनता में आक्रोश व्याप्त होना स्वाभाविक था. इस रोष की अभिव्यक्ति चारण कवियों की वाणी में अभिव्यक्त हुई. उस युग में सभी चारण कवियों ने नरेशों को उनके प्रमाद के लिए प्रताड़ित किया और राष्ट्र की शोचनीय स्थिति पर अश्रुपात करते हुए उन्हें ललकारा.

यद्यपि 1857 के विप्लव के बाद लम्बी अवधि तक राजस्थान के राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में किसी प्रकार की जागृति के विशिष्ट चिह्न परिलक्षित नहीं होते और अंग्रेजों की सेना द्वारा विद्रोहियों को पूर्णतः कुचल दिये जाने के कारण समग्र राजस्थान हताशा एवं पराभव की भावना से ग्रस्त हो चुका था, तथापि राष्ट्रीयता की जो भावना विप्लव ने सुलगाई, उसके स्फुलिंग पूर्णतः निश्शेष नहीं हुए थे तथा अनुकूल परिस्थितियां उपस्थित होने पर वे पुनः धीरे-धीरे सजीव होने लगे. देश-भक्ति एवं अंग्रेज विरोधी स्वर पुनः वायुमण्डल मे यत्र-तत्र तरंगित होने लगे.

यह स्वाभाविक ही है कि जब किसी देश में राष्ट्रीय चेतना का प्रादुर्भाव होता है तो सर्व प्रथम उसकी अभिव्यक्ति देशानुराग के रूप में होती है. राजस्थान की राष्ट्रीय काव्य-धारा की प्रारम्भिक रचनाओं में अतीत के गौरव-गान की यही प्रवृत्ति

दृष्टिगोचर होती है. इन रचनाओं का उद्देश्य देशवासियों के सुप्त गौरव को जागृत कर उन्हें वर्तमान दुर्दशा से मुक्ति प्राप्त करने की प्रेरणा देना होता है.

राजस्थान में आधुनिक काव्य-धारा के सबसे पहले कवि गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' हुए, जिनके "मातृ-वन्दना" नामक काव्य संग्रह में देशानुराग की कविताएं द्रष्टव्य हैं. ऐसी ही एक कविता की पंक्तियां इस प्रकार हैं:—

पंजाबी गुजरात निवासी, बंगाली हो या ब्रजवासी।
राजस्थानी या मद्रासी,,सबके सब हैं भारत वासी ।।
तेरे सुत प्रिय देश। जय देश, जय देश।

इन्हीं के समकालीन कवि प्रतापनारायण पुरोहित की देशानुराग को व्यक्त करने वाली कविता की बानगी देखिये:—

आयो पुरखां रे पथ चाल।
जिण पथ कुम्भा, सांगा, पातल
चांदा, कूंपा, गोरा, बादल
दुर्गादास, शिवाजी
सिंहा, पृथ्वीराज,छत्रसाल।

इसी प्रकार हाड़ोती के कवि मांगी लाल ने भी वीर प्रसविनी भारत भूमि की वंदना के गीत लिखे हैं.

मातृभूमि की आराधना में जिन कवियों ने वन्दना गीत लिखे, उनमें राजस्थानी भाषा के कवियों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा. इन कवियों की बहुत सी रचनाएं लोक गीतों की भांति जनप्रिय हो उठीं.

भारत की वर्तमान स्थिति से क्षुब्ध हो कर कुछ कवियों ने उद्बोधन एवं जागरण-गीत लिखे, जिनमें सुधीन्द्र का नाम अग्रणी है. इनकी एक कविता के प्रलयंकारी तेवर देखिये.—

बजे नवल नवयुग का डमरू
गीत किंकिणी का जाये भर।
बाजे आज कवि की कविता में,
रुद्र गीत का अक्षर–अक्षर।

नाचो नाचो ओ प्रलयंकर।
ओ शिव शंकर, ओ विश्वम्भर
नाचो ओ अतीत के गौरव
नाचो भावी के प्रकाश धर।

अलवर के देश-भक्त कवि हरिनारायण शर्मा ने भी गीतों द्वारा देशवासियों का आह्वान किया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय चेतना को आहूत करने वाली जो काव्य-धारा प्रवाहित हुई उसके मूल में सुनहरे अतीत की गौरव-गाथा का अभिनन्दन है. अतीत की भाव-भूमि पर ही कवि वर्तमान की राष्ट्रीय चेतना की अलख जगाता है.

स्वतंत्रता संग्राम के संघर्ष-काल में राष्ट्र-प्रेम से ओतप्रोत कार्यकर्ता एक ओर राजस्थान की रियासतों के प्रमुख नगरों में राजनीतिक चेतना जागृत करने में लगे थे तो दूसरी ओर ग्रामीण अंचलों में भी जन-जागरण के विविध प्रयास हो रहे थे. ग्रामीण क्षेत्रों में जन-जागृति का यह सिलसिला उन आन्दोलनों के द्वारा चला जो मेवाड़ एवं राजस्थान के अन्य क्षेत्रों में हुए. इन आन्दोलनों के माध्यम से जिस जागृति का सूत्रपात हुआ, उसका उल्लेख प्रस्तुत पुस्तक में किया जा चुका है.

आर्थिक शोषण, उत्पीड़न, अत्याचार, अनुचित लाग-बाग एवं अनेक प्रकार के टेक्सों की भरमार एवं बेगार आदि के विरुद्ध मेवाड़ के बिजोलिया ठिकाने के किसानों और भोमट के आदिवासियों ने सर्वप्रथम विद्रोह का झंडा खड़ा किया था. इससे प्रोत्साहित होकर राजस्थान के अन्य क्षेत्रों में भी आन्दोलन चले. विजयसिंह पथिक, माणिक्य लाल वर्मा तथा मोतीलाल तेजावत के कर्मठ नेतृत्व में संचालित किसान आन्दोलन एवं भील आन्दोलन ने सर्वप्रथम क्रांति का शंख फूंका. इनके बाद बेगूं, सिरोही, ईडर, डूंगरपुर और शेखावटी आदि क्षेत्रों मे भी शोषण के विरुद्ध विद्रोह की आंधी चली.

इन आन्दोलनों के समय जनता में जागरण का शंखनाद फूंकने के लिए कार्यकर्ताओं ने अनेक गीतों की रचना की, जिनसे जन-सामान्य में क्रांति की लहर दौड़ गई. इस सम्बन्ध मे ध्यान देने की बात यह है कि इन गीतों के रचनाकार प्रायः वे ही लोग थे, जो सक्रिय रूप से विविध आन्दोलनों से जुड़े हुए थे. उनकी अनुभूतिया अपनी स्वयं की भोगी हुई-परिस्थितियों की उपज थी, अतः वे नितान्त प्रामाणिक

थी तथा श्रोताओं के हृदय को सीधा स्पर्श करके उनकी मनोभावनाओं को झंकृत कर देती थी ये गीत शीघ्र ही जन-जन के अधरों पर थिरकने लगे.

इन गीतकारों में मुख्यत: विजयसिंह पथिक, माणिक्यलाल वर्मा, भैरवलाल काला बादल, भवरलाल प्रज्ञाचक्षु, जीतमल लूणिया, धीरज बच्छावत एवं ताड़केश्वर शर्मा उल्लेखनीय हैं. तत्कालीन देशी रियासतों की दमन-वृत्ति तथा मुद्रण, प्रकाशन की सुविधाओं के अभाव के कारण इन गीतकारों के संकलन प्राय: अजमेर, आगरा और दिल्ली से प्रकाशित होते थे. ये गीत हिन्दी एवं राजस्थानी दोनों ही भाषाओं में लिखे गये.

क्रान्तिदूत विजयसिंह पथिक की एक रचना की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:—

महाराणा को चेतावनी :

रे मदान्ध गज! सावधान, अब निशा नहीं है।
अब यह तेरे लिए, सुरक्षित दिशा नहीं है।
जगा लोकमत सिंह, क्रान्ति रवि उदय हो चुका।
भाग नहीं अन्यथा तेरे, जीवन का समय खो चुका।

मेवाड़ में जनजागरण के संघर्ष मे श्री माणिक्य लाल वर्मा का अग्रणी स्थान था. उनके मेवाड़ी तथा खड़ी बोली मे लिखे गए गीतों में ग्रामीण जनता के अभिशप्त जीवन का सजीव चित्रण रहता था. उनके "पीड़ितों का पंछीड़ा" के प्रसिद्ध गीत की कुछ पंक्तियाँ देखिये:—

मर्दा ओरे काली तो भादुड़ा री राता सोवे छा।
तन का कपड़ा खोवे छा, हाय पड़यां-पड़यां ये रोवे छा।
आंसू सं डीलड़ो धोवे छा, मर्दा ओरे काली तो .....
ढांडा थाने जाए सिपांही कूटे छा, थान माल कमाई लूटे छा।

देश में व्याप्त भ्रष्टाचार के प्रति उनका रोष इस प्रकार फूट पड़ा था:—

जिस देश में चोर लुटेरे हों, उस देश की कहानी क्या होगी,
जिस देश में रिश्वतखोरी हो, उनसे कुर्बानी क्या होगी,
हर चीज मिलावट वाली हो, जिसमें जहरीली थाली हो,
जिसकी जबान पर गाली हो, सोगन्ध से जवानी क्या होगी।

बून्दी के किसान आन्दोलन में पुलिस की गोलियों से शहीद हुए नानकजी भील की स्मृति में भंवर लाल प्रज्ञाचक्षु ने "नानक जी भील की अर्जी" शीर्षक गीत में कृषकों की करुण स्थिति का इस प्रकार वर्णन किया:—

लेता जाओजी नानकजी भील अर्जी पंचा की।
दीजो मांकी अरजी परम पिता के हाथ।
बून्दी की दुखिया परजा की कीजो सारी बात।

हाड़ोती के कवि भैरवलाल 'काला बादल' ने अपने आक्रोश की अभिव्यक्ति इन शब्दों में की:—

काला बादल रे, बरसा देरे बलती आग।
प्यारा म्हांका रे, कर देर न मन में जाग।

इस प्रकार राजस्थान के अन्य अंचलों के कवियों ने भी जनता की पीड़ा को अपने ओजस्वी गीतों के द्वारा वाणी दी.

श्री मोती लाल तेजावत अपने जीवनकाल में ही इतिहास-पुरुष के आसन पर अभिषिक्त हो गये थे. आदिवासी जीवन की दारुण कष्ट-कथा से व्यथित होकर उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन को उनके कल्याणार्थ समर्पित कर दिया था. उनकी प्रशस्ति में लिखे गये अनेक गीत उनके योगदान की मार्मिक अभिव्यक्ति प्रस्तुत करते हैं.

मेवाड़ के प्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानी भूतपूर्व मन्त्री एवं सांसद श्री बलवन्तसिंह मेहता द्वारा लिखित गीत "स्वातंत्र्य-वीर तेजावत" की पंक्तियां इस प्रकार हैं:—

खोजे सब इतिहास को
खोजा राजस्थान।
तेजावत सम ना मिला।
जन जाति का प्रान॥

पढ़े सुने अरु देख लिए
नेताओं के हाल।
दिखा न मोतीलाल सम
अण-दागल एहवाल॥

साहस मोती जो कियो,
दिखा न भारत मांय ।
लोह लिया अंग्रेज सों,
राजवाड़ों के मांय ॥

नहीं दोखा न लिखा कुछ,
दिखा न नेता हाथ ।
पर मोती के दमन में,
रहे राज नव साथ ॥

पाट उतारे मोत कई,
भ्रम में मोती लास ।
मशीनगन से भून दिये,
अठारह सो के मास ॥

अलख लगाई देश में,
बरस आठ बन जाय ।
जगी बरस नव जेल में,
भर योवन के मांय ॥

अनन्य सेवक जाति-जन
राजस्थान उप मान ।
तेजावत तब से बने,
जन-जाति के प्रान ॥

जो न कियो बहु साधु मिल;
कियो अकेलो आप ।
सहसन को मुक्त किये,
मद्य मांस के पाप ॥

मेदपाट के शाह दो,
भामा मोती वीर ।
भामाशाह चित्तौर को,
यो कोल्यारी वीर ॥

दोनों के कुलधर्म एक
दोनों के इक मान ।
सिर सोंदे करणिये दऊ;
मर-मिटने की बान ॥

भारत गौरव शाह दउ,
अरु राजस्थानी वीर।
इक देश को त्याग-वीर,
इक जन-जाति वीर ॥

दोनूं शाह रण बांकुरे।
दोनों ही रणधीर।
हल्दी घाटी वीर एक,
इक अरण्य-रणवीर ॥

राखी दोनों टेक एक,
दोनों की इक शान।
मान दोनों के एक से,
दोनों की इक आन ।।

लख योद्धा मोती तुम्हें,
भामा वीर समान।
प्रशस्ति अर्पित तुम्हें,
फूल पांखुरी जान ।।

उपर्युक्त गीतों का मेवाड़ी बोली में विज्ञ बंधुवर डा. ब्रजमोहन जावलिया द्वारा किया गया भावानुवाद अविकल रूप से यहां प्रस्तुत है:—

खोज्या पतड़ा ख्यात रा, नेता राजस्थान।
तेजावत सम न मिल्यो, जात रैत रो प्रान ॥ 1 ॥

भण्या सुण्यां देख्या घणां, नेतावां रा हाल।
मिल्यो न मोती लाल सो, अगदागल अहवाल ॥ 2 ॥

साहस मोती लाल सो, मिल्यो न भारत मांय।
लावा लिया फिरंग सूं, रजवाड़ा रे मांय ॥ 3 ॥

न दीक्षा शिक्षा कछु, न नेता रो हाथ।
मात भोम रा चरण पै, अरप्यो तेजो माथ ॥ 4 ॥

अण भणिया गुणिया घणा, दियो न नेता हाथ।
पर मोती रा दमण मां, मिल्या राजनव साथ ॥ 5 ॥

घाट उतारिया मौत घण, ओलख मोती लाल।
गोला गमण उड़ाविया, अठारा सौरा भाल ॥ 6 ॥

अलख जगाई देश में, बरस आठ बन जोय ।
नौ बर कारा काटिया, मोती ओवन खोय ॥ 7 ॥

धाकर जातरू रैत रो, मेद पाट रो मान ।
तेजावत तप सूं बण्यो, जन जाति रो प्रान ॥ 8 ॥

जो न कियो घण साधू मिल, कियो अकेले आप ।
सहसा ने भुगता किया, मद मांसा रे पाप ॥ 9 ॥

मेदपाट रा शाह दो, आमो मोती वीर ।
एक शाह चित्तौड़ रो, इक कोल्यारी वीर ॥ 10 ॥

ओसवाल दोनूं जणां, दोयां रो इक मान ।
सिर रा सोदा करणिया, मान वान रे मान ॥ 11 ॥

रण रसिया दोई जणां, दोई हा रणधीर ।
हल्दीघाटी वीर इक, इक मारण रो वीर ॥ 12 ॥

लख जोधा मोती घने, भड़ भामा रे मान ।
फूल पांख अरपै घणा, सादर थारे ठाण ॥ 13 ॥

अम्बालाल भावसार "भावुक" के गीतों में भी आदिवासियों की सुप्त चेतना को झकझोर कर जागृत करने की भावनाएं मुखरित हुई है. उनकी "मूं थाने आज जगाऊं" कविता की कुछ पंक्तियां बानगी के रूप में यहां प्रस्तुत हैं:—

मेवाड़ धरा रा भोला जागो, मूं थांकी बात बताऊं ।
पुरखां री बातां सुण लो, मूं थांरी बात सुनाऊं ॥
सब मिनखां रा मन मंदिर में थाने आज उजालो करनो है ।
आफत री आंध्यां सूं लड़ता, पगल्या ने आगे धरणो है ॥
धरमधजा ने साथ ले, दुनियां में नाम कमाणो है ।
खुशियां रो नो नवो मेल इण हाथां सूं रोज बणाणो है ॥
गेलापण में मत रीज्यो थे, आ बात फेर में बतलाऊं ।
मेवाड़ धरा रा भोला जागो, मूं थाने आज जगाऊं ॥

इस प्रकार स्वतन्त्रता का आह्वान करने तथा जनता को अपनी दयनीय स्थिति का अहसास कराने के लिए अनेक कवियों ने अपने ओजस्वी गीतों के द्वारा जन-चेतना को जागृत किया. उस समय जन कवियों, जन नेताओं और जनता के सम्मिलित प्रयासों की त्रिवेणी ने समग्र प्रान्त को आप्लावित कर दिया था. देश को स्वाधीनता की

मंजिल तक पहुंचाने में इन प्रयासों का ऐतिहासिक महत्व है. देश की आजादी के इतिहास में मानवीय चेतना को झकझोरने वाले ये स्वर सदैव अमिट अक्षरों में अंकित रहेंगे.

स्वातंत्र्य मनीषी नर श्रेष्ठ मोतीलाल तेजावत के महत्वपूर्ण संघर्ष की कहानी युग-युगों तक जन-चेतना में ओज, साहस और अन्याय से जूझने की प्रेरणा उत्पन्न करती रहेगी. आज स्वाधीन भारत में भी आदिवासी एवं समाज के निम्नतम वर्ग के प्राणी अभावों के व्यथाकारी वातावरण में जिस प्रकार जीवन-यापन करने के लिए विवश हो रहे हैं, उसमें भी तेजावतजी के कर्म और संघर्ष की भूमिका का महत्व तनिक भी कम नहीं हुआ है, अपितु वह आदिवासी समाज एवं हम सब के लिए शाश्वत प्रेरणा का स्रोत बना रहेगा. तेजावतजी की संघर्ष-गाथा के अनेक पक्षों को अभी भी उजागर करना शेष है. भारत की स्वाधीनता के इतिहास में तेजावतजी का अनूठा, मार्मिक योगदान अपने इन्द्रधनुषी रंगों में सदैव झिलमिलाता रहेगा. उनकी स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिए देश की स्वाधीन पीढ़ी ने कुछ नहीं किया है. यह हमारी अकृतज्ञता की पराकाष्ठा है. निस्सन्देह आने वाले समय में ऐसे वीर पुरुषों के कर्म-समुच्चय का पुनर्मूल्यांकन करना अनिवार्य हो जायेगा, क्योंकि इस ऐतिहासिक थाती को विस्मृत कर हम कभी आगे नहीं बढ़ सकेंगे. हमारी स्वचेतना को देश के नव-निर्माण की दिशा में अग्रसर करने के लिए इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का आधार नितान्त आवश्यक है.

एकादश अध्याय

आदिवासी लोक-संस्कृति के रंग

जिस जाति का शताब्दियों से सघन वन-खण्डों, पर्वतीय क्षेत्रों, सरिताओं, जलाशयों, प्रपातों, वृक्षों, लता-कुंजों एवं विविध पुष्पों के साथ साहचर्य रहा हो, और अहर्निश इन्हीं के बीच विचरण करते हुए कर्म-पथ पर अग्रसर हो रहे हों, उन पर प्रकृति के विविध धूप-छांही रंगों का कितना प्रभाव पड़ता होगा, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है. उनके मानसिक चिन्तन, रहन-सहन, व्यवहार, मनोरंजन, पर्व-त्योहार, कला धर्म, उपासना, वेश-भूषा, समारोह आदि पर वातावरण का प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है. निस्सन्देह इस वातावरण ने आदिवासियों की लोक-संस्कृति पर भी अपनी अमिट छाप डाली है. इसका आभास भीलों की दैनंदिनी जीवनचर्या और उनके गीतों और नृत्यों में झलकता है. इस समृद्ध परिवेश ने भीलों की लोक संस्कृति को समृद्ध एवं समुन्नत किया है. इस सम्बन्ध में विशेष ध्यान देने की बात यह है कि यह संस्कृति अभी तक बाह्य-प्रभाव से अछूती एवं अप्रभावित रही है. यद्यपि इस पर नागरिक संस्कृति का दुष्प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो गया है फिर भी आदिवासी लोक-जीवन में इसकी जड़ें गहरी हैं और यदि शहरी संस्कृति के आक्रमण की बाढ़ को

नियंत्रित रखा जा सकेगा तो इसमें कोई संदेह नहीं कि लोक-संस्कृति की यह बेल उत्तरोत्तर फलती-फूलती रहेगी.

आदिवासियों के नृत्यों और गीतों की उद्दाम लहरें उनके उल्लास और उमंगों को वेग एवं गति देती है. साथ ही आनन्द का यह अतिरेक नानाविध अन्य कलाओं को भी समृद्ध करता है. इनकी चित्रकला, वास्तुकला, काष्ठकला सौन्दर्य बोध की दृष्टि से अनुपम एवं सजीव होती है. शहरी मानदंड से भले ही उनका मेल न बैठे, किन्तु आदिवासी लोक संस्कृति को उजागर करने में इनका महत् योगदान है.

हरित शैलमालाओं के मध्य अधित्यकाओं में जब इनके गीत और नृत्य की लहरियाँ दिग्दिगन्त को झंकृत कर देती है तो वहां आनन्द, उत्साह और रस की सजीव सृष्टि का प्रादुर्भाव हो जाता है.

भीलों के सांस्कृतिक उत्कर्ष का प्रतीक गवरी नृत्य है, जो भगवान शंकर एवं माता पार्वती को माध्यम बनाकर उनकी उपासना में आनन्द विभोर होकर सम्पूर्ण अल्हड़ता के साथ किया जाता है. वर्षा ऋतु में यह नृत्य नाटिका संवादों और गीतों के रूप में आदिवासी क्षेत्र के गांव-गांव मे तथा नगरों में एवं कस्बों में अभिनीत की जाती है. अनोखी वेशभूषा और मुखोटे धारण कर पात्र विचित्र भंगिमाओं द्वारा अभिनय को सजीव बनाते हैं. वर्षा ऋतु में यह नृत्य 40 दिन तक अविच्छिन्न रूप से स्थान-स्थान पर चलता रहता है.

इसी प्रकार फाल्गुन मास में आदिवासियों के गैर एवं घूमर नृत्य होलिकोत्सव के पूर्व एवं पश्चात् अविराम गति से तन्मयतापूर्वक चलते रहते हैं. ये नृत्य उमंग, उत्साह एवं अल्हड़ता के कारण इसकी ऐसी सृष्टि करते हैं कि कलुष एवं कल्मष पूर्णतः विदा हो जाते हैं आदिवासी जीवन की सम्पूर्ण आस्था इन नृत्यों में अभिव्यक्त हो जाती है. आदिवासी महिलाएं रंग बिरंगे चटकीले वस्त्र धारण कर घूमर नृत्य प्रस्तुत करती हैं तो एक अनोखा समां बन्ध जाता है. तीज एवं गणगौर जैसे पर्वों पर इनके गीत एवं नृत्य आनन्द एवं रस की सृष्टि करते हैं.

विविध मेलों के अवसर पर भील स्त्री-पुरुषों का सामूहिक उल्लास देखते ही बनता है. मेलों में ये गीत नृत्य करते हुए स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करते हैं. वर्ष के विभिन्न महीनों में आयोजित होने वाले ऋषभदेवजी, मातृकुण्डियां तथा गढ़बोर चारभुजाजी के मेलों में आदिवासी स्त्री-पुरुष बड़ी संख्या में उपस्थित होते हैं. वे अपने गीतों एवं नृत्यों के द्वारा अपने उपास्य देव को प्रसन्न करने की चेष्टा करते हैं. भील केसरियाजी के अनन्य भक्त होते हैं. ये "कालाजी" के नाम से उनकी पूजा करते हैं.

वर्ष-भर में आने वाले मुख्य पर्वों पर आदिवासी अपने घरों को सजाते, संवारते एवं सुसज्जित करते हैं. मांडनों द्वारा अपने छोटे-छोटे घरों को चित्रित करना इनकी विशेषता है. पर्वानुकूल ये मांडने भी भिन्न-भिन्न होते हैं. उदाहरण के लिए होली पर कमल का फूल, दीपावली पर सोलह दीपक तथा नवरात्रि पर पथवारी मांड कर अपने घरों की शोभा बढ़ाते हैं. कागज पर गणेशजी, माताजी, भैरूजी एवं अन्य लोक देवताओं के चित्र बनाते हैं, तथा इनके भित्ति-चित्र भी बनाते हैं.

हस्तकला के रूप में आदिवासी विविध कलाकृतियों का सृजन करते हैं. इनके घरों के दरवाजे कला के आकर्षक नमूने होते हैं.

भीलों के छोटे-छोटे देवरों (देवालयों) की शोभा भी देखते ही बनती है. इनके निर्माण में आदिवासियों के कलात्मक सौष्ठव का परिचय मिलता है. इनके लोक गीतों मे भी देवरों की निर्माण कला का वर्णन मिलता है. देवरो के भीतर स्थापित की जाने वाली प्रस्तर प्रतिमाएं भी कला के सुन्दर प्रतिमान प्रस्तुत करती हैं. अब मिट्टी की मूर्तियों का भी प्रचलन हो गया है. नाथद्वारा के समीप मोलेला गांव में निर्मित मिट्टी की मूर्तियां निस्संन्देह कला की दृष्टि से अनुपम हैं, जिनकी आदिवासियों के देवरों में तो स्थापना की ही जाती है, किन्तु आजकल वे सम्पन्न व्यक्तियों के घरों की शोभा भी बढ़ाने लगी हैं.

विविध सुरम्य रंगों के प्रति आदिवासी महिलाओं का विशेष लगाव है. भील स्त्रियों की पारम्परिक पोषाक बड़ी आकर्षक, कलात्मक, रंगबिरंगी एवं सुन्दर होती है. ओढ़नी, घाघरे तथा चोलियों की कलात्मकता ने अन्य प्रान्तों को भी आकर्षित किया है.

आदिवासियों की यह सांस्कृतिक धरोहर जीवन के प्रति उनके गहरे विश्वास एवं आस्था को अभिव्यक्त करती है. इसीलिए उनकी कला जीवन्त एवं शाश्वत है. यह उनकी अस्मिता एवं अस्तित्व से उद्भुत होती है. बाह्य-परिस्थितियां उनकी इन आस्थाओं को खंडित नहीं करती. यद्यपि आदिवासी विपन्न एवं अभावग्रस्त हैं, फिर भी यह स्थिति उनके मूलभूत विश्वास एवं आस्था को विघटित नही करती और इस प्रकार उनकी सांस्कृतिक परम्परा की धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती रहती है.

यह तकनीकी विकास का युग है. योजनाओं के अन्तर्गत विकास का स्वरूप सामान्यीकरण की ओर बढ़ रहा है. हस्त कलाएं लुप्त होती जा रही हैं. हस्तकौशल, साज संवार एवं सुरुचि का विघटन होता जा रहा है. यांत्रिक युग में मशीनी मस्तिष्क सामान्यीकरण की ओर अग्रसर हो जाता है तो कलाएं सिसकियां लेने लगती हैं और धीरे-धीरे निर्जीव हो जाती हैं.

लोक-संस्कृति पर यह सीधा प्रहार है. समय रहते हमें सतर्क हो जाना चाहिए तथा लोक संस्कृति की प्रतीक लोक कलाओं का किसी प्रकार विघटन न हो, इसका ध्यान रखा जाना चाहिए. वास्तव में हम सभी का यह दायित्व हो जाता है कि लोक संस्कृति की यह स्रोतस्विनी निरन्तर समृद्ध होती रहे और देश की महान् संस्कृति में अपना योगदान देती रहे. निस्संदेह हमारे देश की संस्कृति लोक-संस्कृति की इन धाराओं से ही पुष्ट एवं पोषित हुई है. ये धाराएं हमारे देश की संस्कृति का आधार हैं. इन्हें आत्मसात करके ही वह ऊर्जास्वित होती हैं और पूरे देश के लिए स्वीकार्य बनती है.

श्री तेजावतजी ने आदिवासी समाज के समग्र उत्थान को अपना लक्ष्य बनाया था. आदिवासियों के आर्थिक शोषण एवं उत्पीड़न को निश्शेष करने का तो उनका प्रधान लक्ष्य था ही, किन्तु इसके साथ ही उन्होंने समस्या के सामाजिक एवं आर्थिक पक्ष की भी उपेक्षा नहीं की. उन्होने भील-समाज में व्याप्त कुरीतियां, अन्धविश्वास, मद्यपान, गो मांस भक्षण जैसी विकृतियों से उनको विरत करने का भी भरसक प्रयत्न किया. सांस्कृतिक क्षेत्र में कतिपय व्यक्तियों एवं सगठनों द्वारा उनके कलात्मक प्रयासों और हस्तकौशल से मिलने वाले लाभ से उनको वंचित करने का विरोध किया. वे चाहते थे कि भील समाज के कलात्मक कार्यकलापों एवं प्रयोगों का पूरा-पूरा लाभ उन्हें मिले. उनकी यह भी इच्छा थी कि आदिवासी समाज के सांस्कृतिक जीवन की विशिष्टताओं का किसी प्रकार विघटन नहीं हो. सांस्कृतिक क्षेत्र में बिचौलियों की उपस्थिति को वे हेय समझते थे.

आदिवासी समाज को उन सब चुनौतियों का संगठित होकर सामना करना होगा, जो उनके सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक सम्बल को निस्तेज करती हो तथा विकास के नये क्षितिज को छूने वाली उनकी प्रगति के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करती हों. श्री तेजावत के छोड़े हुए कार्यों को नई गति देने का हम सभी संकल्प करें, यह वांछनीय है.

जैसा कि इस प्रकरण के प्रारम्भ में कहा गया है, अभावजन्य परिस्थितियों से जूझते हुए भी आदिवासी स्वच्छन्द एवं मुक्त रूप से संगीत एवं नृत्य का विविध अवसरों पर भरपूर आनन्द लेते हैं, चाहे वह होली, दीवाली, तीज, गणगौर के पर्व हों या विवाह, धार्मिक पर्व, मेले, ऋतु, प्रकृति आदि से सम्बन्धित समारोह हों. गीत एवं नृत्य के बिना प्रत्येक पर्व उनके लिए अधूरा रहता है. इनके लोकगीतों में इनकी संस्कृति, रीति-रिवाज, रहन-सहन तथा जीवन के सभी पक्षों की अभिव्यंजना रहती है, साथ ही वे शृंगार, वीर, करुण, हास्य आदि रसों से परिपूर्ण होते हैं. इनके लोक-गीतों में प्राकृतिक सौंदर्य का भी उन्मुक्त चित्रण रहता है.

आदिवासियों के जीवन में प्रेम का शाश्वत स्थान है। प्रेम रस से सराबोर ये आनन्द एवं उमंग के प्रत्येक अवसर पर अनायास थिरक उठते हैं. प्रेम के अन्तर्गत संयोग शृंगार का वर्णन ही इनके लोकगीतों में मुख्यतः रहता है. उल्लास एवं आनन्द उनके जीवन के मुख्य आधार हैं.

निम्नांकित गीतों में भाई-बहन के सहज स्नेह की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं:—

रतनी सो की हुई जलकांव....
राई ने केवो बोले रे
मारण जाती ऊबीरे
कूड़ा ने वावडिया रे
रींट को है घोरो
घोरे — घोरे फरे
कोरबन — पाणदिए
पांणी घामा दोड़े
फूले फूले फरे !
भाई ने नानूं रहयुं
भाईनी खेती बोली
वै कूडा नी खेती
रतनी खेती नी है हुंसयार
खेतो खेतो फरे
भाई बेन नी जोड़ी
बाई एक कूड़ो तोए आलुं
घेर मोग वांटो आलुं
भाई नो वांटो आलुं
....
....

आषाढ़ माह आ जाने पर भी वर्षा के आसार नहीं हैं. आदिवासी देवी को प्रसन्न करके वर्षा का आह्वान करते हैं. गीत की कतिपय पंक्तियां इस प्रकार हैं:—

राई ने केवो बोले मांगजी रा रे लिम्बिया भाई....
जेठ आसाड़ी वाड़ी रे
पहल नाहि आवे रे
माता ए वगला वा जो रे
बाड़ा पाटरी लावोरे
माता लिम्बस बांज रे
डाबोरनी माता रे..

वधू-पक्ष की आदिवासी महिलाएं वर को सम्बोधित करके उसे वधू के लिए रुपया तथा कुछ वस्तुएं लाने के लिए इस प्रकार कहती हैं:—

रुपया लाजू वे तो लाव,
ने तो रेज झांपा बार.
टीलड़ी लाजू वे तो लाव
पडलु लाजू वे तो लाव,
दारु लाजू वे तो लाव
घुगरी लाजू वे तो लाव
मोड़िला लाजू वे तो लाव
पागड़ी लाजू वे तो लाव
हांला कटारी लाजू वे तो लाव.

आदिवासी अपने शोषण और उत्पीडन के प्रति भी आक्रोश व्यक्त करते थे. रियासतों के राजा तथा सामन्त उन पर अत्याचार करते रहते थे. जो कुछ भी छोटा मोटा अन्न वे पैदा करते थे, उसे वे लगान या ऋण की वसूली के रूप मे ले जाते थे और उन्हें असहाय कर देते थे. गीत की इन पंक्तियों में इनकी वेदना की झलक देखिए:—

रे भीलंई दुख मत दीयो राज, भीलंई दुख मत धीयो राज
रे छोटा-छोटा धान मती कूंतो राज, छोटा धान मती रे कूंतो राज
रे भूख मरे भोला भील, भूख मरे भोला भील
रे इतरो दुख वेठे तो पेरो परे राज पेरो मेरे मो राज.
रे इतरो दुख कुण सेवे राज, इतरे दुख कुण सेवे राज,
रे मारी अरजी सुन ज्यो राज, मारी अरजी सुन ज्यो राज
रे खर भानरो भोग मती लेवो राज.......

होली के पर्व पर आदिवासियों का उमंग-उत्साह एवं उल्लास देखते ही बनता है. इनके होली-गीत में इन भावों की अभिव्यक्ति कितनी मार्मिक है:—

होली बाई आज ने काल
होली बाई जाए रे जाए......
होली बाई उण जेवी पासी आव जेरे
होली बाई तो ए ते खूब रमां डां रे
होली बाई फाग गावा ने गुलाल उड़ाड़हां है रे
होली बाई फाग गावां ने कल्की करां रे
होली बाई फाग गावां ने फागणियुं ओढ़ा रे
होली बाई फाग गावां ने गैर रम्हां रे .....

आदिवासी राजा-महाराजा और जागीरदारों के अत्याचारों के विरुद्ध तो आक्रो
व्यक्त करते ही थे, किन्तु उन्होंने अंग्रेजों की गतिविधि को भी सदैव संदेह की दृष्टि
देखा. भील अंग्रेजों को विश्वसनीय नहीं मानते थे. अंग्रेजों ने मेरवाड़ा में जब शासन
स्थापित की तो आदिवासियों ने अपनी प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यक्त की:—

रई ने केवा बोले रे
अंगरा जी आवणु पड़ है
सड़क माए मेरवाड़ु
नवी कपणी मांडे
भूरियु नवी लावणी मांडे
जमी मोल लिए
पाड़ा वारी भास भरती
खालड़े जमी मांप
खालड़े भरती जमी मांप
भूरियु अंगला मांडे
भूरियु सड़क कढ़ाड़े
....
हिदूरा का हिंद
भूरियु गोड लोक
भूरियु दगा सूं भरियु
दगो करवे लागु......

भीलों की गांधी जी के प्रति बड़ी श्रद्धा थी. गांधी जी के रचनात्मक कार्यों के लिए उनके मन में तीव्र आकर्षण था. गांधी जी ने देश को स्वाधीन कराया है, यह वे जानते थे.

रई ने केवा बोले रे
गांधी हुई आवेरे
धोली ने टोपी रो
लाम्बो ने कुरतो पेरियां
एक धोति यु पेरियां
अंगरेजों नु राज
गुलामी नहीं करवी
भली करी ने रेवु

एम के तो भावे गांधी

....

....

राज से तो भावे

अंग्रेज भगावतो भावे

मीटिंग करतो भावे

भाषण दे तो भावे

भारत भाजाद कीदो। ....

राज्य के अधिकारियों द्वारा किए गए अत्याचार और शोषण के विरुद्ध आदिवासी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करते थे. मन माने लगान, रिश्वत, बेगार आदि अनाचारों की अभिव्यक्ति गीत में इस प्रकार हुई है:—

राईने केवं बोले बावजी कमन्दारी केद परीयु

मादरी वाले रावले बावजी, भोगेन बान्दे वरीयू बावजी

सानो भोग लिये, राते भोग लिये

गेहूं के दवानो भोग, मानवी नी मैलो

दूनी हवाल लेवे, दूनू लाडु लेवे

हीनों बगरो लागों, कूंता ने हे बगरो

मानवी बदली गइया

कामदार कुटाई मइयू, कामदार कैद परीयु

हीने कारण कुटीयूं, दूना कूंता दूनूला टु करे

कूने राजा वाजे, राजा फतेसींग जी

बीरे याने कागजिया, डाके धामा दो रे

पई वाल हेरे, ऊन्दरी वाल हेरे

भाई वालो हेरो, पीछोला नी पाले

राइ भांगना माये, भरोया ने दरीखाना

बीरीया कागज आलो राजा कागज खोले

टपर टपर बोले.........

विवाह के पश्चात् वर पक्ष की महिलाएं हास्य मिश्रित गीत इस प्रकार गाती हैं:—

वेवाइ थारी रोटी संवालो, अम पड्जीया रोटी नई खाता रे

बेवाई थारी रोटी संवालो, अम बासीया रोटी नई खाता रे

बेवाई थारी दाल संवालो, थम थासी दाल नई खाता रे
वेवाई थारी लापसी संवालो, थम थासी लापसी नई खाता रे
....
....

विवाह के ही अवसर पर गाया जाने वाला एक अन्य गीत है, जिसमें वधू होमलें अपने शृंगार के लिए विविध वस्तुएं एकत्रित करती है. कुछ पंक्तियां देखिए :—

होमली ने हात हुर्ता कंकु,
होमली लगेनो लकता आया
होमली भरावां ना हाटां
होमली लखेरानी हाटां
होमली हाट ने बजारां
होमली होनीड़ा री हाटां
होमली पीजेणी मोलावे
होमली नथड़ी मोलावे
होमली पीठोनी मोलावे
होमली पीठी नो होरम फूटे
होमली लंगना लकता आयां......

अन्त में एक नृत्य-गीत की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं. कृषि के लिए वर्षा पर निर्भर रहने वाले आदिवासी स्त्री-पुरुष आकाश में काले मेघों को देख कर किस प्रकार थिरक उठते हैं, उसका सजीव वर्णन इस गीत में है. वे बांसुरी, ढोल, मांदल के साथ तालियां बजाते हुए उन्मुक्त होकर गाने और नाचने लगते हैं:—

काली—काली बादली मां मेलती ढगेली,
सीड़ी सीड़ी पाणी पड़े मागोली-सी झोंपड़ी
गले न गले सुए पाय मा बीछीया,
बीछीया ने छमके आसु वो जुवानाय.........

आदिवासियों का आनन्दोच्छ्वास से भीगा हुआ मधुमय जीवन अभावों के परिवेश से निरपेक्ष होकर किस प्रकार जीवन की स्वप्निल कल्पनाओं में बेसुध हो जाता है, उसकी एक संक्षिप्त झांकी ऊपर देने का प्रयास किया गया है. उनकी मौजी प्रकृति के आगे जीवन की कठोर परिस्थितियां भी छुईमुई सी नगण्य बन जाती है. ___

The Second Bhil Tragedy

in

Sirohi State



: Report :

by

The Representatives of the Rajasthan Sevasangh, Ajmer



Published by

Rajasthan Sevasangh, Ajmer



MAY 1922

THE SECOND BHIL TRAGEDY IN SIROHI

(All of a sudden the information that the State and Government forces had consumed to ashes the village of Bhula and Balolia in Rohera Tehsil and Killed and wounded several Bhils and Grassias was received from the Bhils and Grassias in the Sewa Sangh on the 9th May, 1922. A Government communique also appeared in this connection in some papers of the 10th May, 1922. Considering the gravity of the situation and the request made by the Bhils and Grassias to extend a helping hand to them, it was considered of vital importance to investigate into the matter. For this purpose Syt. Satya Bhaktaji, late Joint Editor, "Bhawishya", and Shri Ram Narayanji Choudhri, Secretary Rajasthan Sewa Sangh were deputed on behalf

THE SECOND BHIL TRAGEDY IN SIROHI

(All of a sudden the information that the State and Government forces had consumed to ashes the village of Bhula and Balolia in Rohera Tehsil and Killed and wounded several Bhils and Grassias was received from the Bhils and Grassias in the Sewa Sangh on the 9th May, 1922. A Government communique also appeared in this connection in some papers of the 10th May, 1922. Considering the gravity of the situation and the request made by the Bhils and Grassias to extend a helping hand to them, it was considered of vital importance to investigate into the matter. For this purpose Syt. Satya Bhaktaji, late Joint Editor, "Bhawishya", and Shri Ram Narayanji Choudhri, Secretary Rajasthan Sewa Sangh were deputed on behalf

of the Sangh to proceed to the spot and make the necessary investigation. The following is the report submitted by them.-B S. Pathik.)

How we got at spot :

Starting from Ajmer in the morning of the 11th may we arrived Keshabgunj station at nine in the night. Knowing nothing of the place, we felt the necessity of a pioneer to show us the way. But we learnt that it was not an easy task either to get at the spot or to find out someone to guide us, because firstly, there were obstacles put up in the way by the State, for which purpose we came across three persons stationed at the Railway Station, and secondly that people feared to go there. However, with great trouble a man consented to take us to the neighbouring village. On reaching there, we learnt that owing to the mishap at the villages of Balolia and Bhula, the people had fled away for their lives to the hills and that most of them were highly frightened. We came across similar condition prevailing in the village in the way to Balolia. We felt severely the want of a pioneer on account of which we could not be at the spot before the 14th. Balolia is only 15 or 1[illegible] miles distant from Keshabgunj station. It took us three days to get at the destination only; from this the difficulties that must have beset our journey could easily be conjectured. Once our disappointment was so great that we even contemplated to return. However, by hook or by crook, we arrived at destination on the evening of the 14th.

BALOLIA

On reaching the village, we came to know that there was no one there, most of t[illegible] the hills. With the he[illegible] persons to be found the[illegible] down all the people [illegible] investigation. Many of t[illegible] the following day. W[illegible] prominent Punches in connection with the havoc. We reproduce them below:—

Punche's statement :

"Mansa Ram Brahman and Sankla Mahajan of the village of Bassa came into Balolia on the 4th, and reporting themselves as having been sent by the State they called upon us to pay the revenue. They also said that should we consent to pay it up, they would stop the forces from entering into our village. They further promised to intercede on our behalf in the matter of decrease in the revenue. There upon we said that the Punches of different other places also come there and that we were conferring together on the point. We said that we would do as arrived at by the majority and that otherwise, according to our religious Eki we were even then ready to pay Rs. 1/4 and 12.5 seers per plough in grain without consultation with anybody. Mansa Ram as well said that he too had promised to the Diwan Saheb to pay the revenue of Balolia by himself but that he (Diwan Saheb) retorted that he had to break up the Eki of the Bhils. After Mansa Ram and other's departure, there horsemen approached there and going about hither and thither (probably for purposes of manover) they went away. Many of the inhabitants nightly carried away and deposited some grain & c. in the hills for fear lest they should have to remain without food for six or seven days in case of an attack being made on them. Other things were left in the houses, because we believed that should the men of the State carry away any thing it would be in the most as compensation to the value of the revenue.

"There was a fear of the approach of the forces in the morning of the 5th. In order to avoid impending disaster we sent Buddha Kotwal to Mansa Ram Brahman of the village of Bassa, so that he might inform the State that we never refused to pay the revenue, rather that we had set apart the amount of revenue ready to be stumped up, that our Punches had been considering the matter, that after their decision we would also pay our revenue along with others and that forces need not be sent.

"Buddha might be one mile from the village when he heard the beat of drums, whereby rightly appereheriding the approach of the forces, he returned. Others also fled away to the hills on hearing the

drum-beats. We had told off some 5 or 6 men to wait in a pit behind a line of stones made for the purpose, so as to apprise us of the impending danger by the beat of drum, before it be too late for us to flee off for shelter in the hills.

"The force at last came in at about 7 in the morning. There were the Diwan Saheb and three Topiwallas (Europeans) with it Two Europeans perched two guns on the front & two hills. An Englishman who had a flag in his hand put the lenses to his eyes under a tamarind tree, and soon the booms of the guns and rifles rent the air. Those who were sitting concealed in the pit in business to apprise the villagers of the danger fled away on hearing the reports. Showers of bullets rained upon them. They hid themselves in several places, but were all along shot at The foremost among the victims was kanha son of Rajha Bhil, who fell dead struck with a bullet. His brother Lakha turned back to lift him up and was forthwith made a target. Shots followed him wherever he fled, till at last he too fell down dead with five bullets lodged in his body. The third man Poona who had managed to get away a little ahead, was also shot at by the soldiers up the hill He sustained two shots in his forelegs, but somehow or other he made clear of them. A Bhil of Dimti village in Idar who came to attend the punchayat, fell in their direction, and was not spared the callamitous fate. He too succumbed to the shots. Moreover, Kalla son of Ratna Bhil and Lala son of Neta Bhil also sustained wounds, the former while he was ascending a hill and the latter standing under a tree. The shot which struck Lala came piercing the tree behind which he was poised. A man and a woman also suffered in the same way. Many punches of villages in adjoining States also fell down a prey to the firing, but were carried away by their compasnions hustled up into cloth. Seeing our brethern thus ruthlessly slain, some of us fired at the soldiers, but they were far below the required range.

"The Englishman with the flag was making signs with it and the soldiers were discharging their guns in that direction. The Machine guns and rifles played incessantly till two, in the afternoon. The army seemed scattered all about and she shots pouring down like rains.

"The army set to looting and burning the village from about 8 a.m.

The cavaliers went on throwing in cloths soaked in oil into the houses and fell one after another to fresh ones as each glazed with fire.

"The booty comprised of arms, grain, utensils, clothes, & c. What could not be carried was either demolished or burnt down. They did not spare even deserted houses, and the posts over the wells. The grain of the summer harvest that we had concealed in the hills, was also hunted up and carried away over camel backs and carts. The force retired at about 2 in the afternoon.

"We came down into the village at noon the next day, and searched for the bodies of the deceased We found the corpses of kana and Lakha near the well which goes by the name of Umrao, where they had been burnt with oil and fuel. The corpse of the hills, of Dimti was also found in the neighbouring hill. We performed the burning ceremonies of these three bodies by the bank of the river. Afterwards the people put to quelling the fir looking after their effects and bringing out the half burnt grain. We left for the hill for the night.

"The Diwan Sahib came with two Europeans, the tehsildar of Rohera and about 100 to 150 soldiers into the village at about 7 in the morning on 8th May. He sent us word through the punches of the Bassa village that if we did not return to the village, we should be shot down up the hill. There upon we came to him at the village. 'A European said, 'We have killed 50 of you and wounded 150 and if you are not straight still we would kill more.' We, however, remaind silent. After this the Diwan Sahib enquired from us our grievances. We said, 'The servants of the State almost rob us, trouble us and extract too much of grain etc. in the shape of the revenue.' Again, the Diwan Sahib asked us to break up our "Eki" We replied, 'that our Eki was a religious and social binding, which we cannot break up.' In doing this we will be deprived from marrying anobody; neither would anybody seek us in marriage for the matter of that." Upon this the European threatened to shoot us and demanded of us to swear before him on Bhawani (Sword) that we would break up our Eki and return to the village. We took up Bhawani out of fear but we did not agree to break up the Eki.

"As regards revenue; we said we would not pay more than Rs. 1-4-0 and twelve-and-half seers of the corn per plough and that too after two years because the State has got our houses burnt and men killed. The Diwan replied saying those who had suffered from burning of houses would be exempted from payment of revenue, but that others would have to pay. We remained silent. Then the Diwan went away promising to represent our grievances to the Bara Sahib at Abu (A. G. G. for Rajputana).

"The State has annihilated our all and has deprived us of the means to maintain our families even for a few days. We had been storing corn since the great famine of Samvat 1956 (1899 A. D.) to meet any similar calamity and the Raj has destroyed it all. Even now it threatens to kill us if we won't break our religious vow of Eki. We have, therefore, lost all faith in the Raj and deem it proper to live on the hills as we fear our houses may be burnt again if we rebuild them. The Raj has committed such an outrage several times before. We have made up our minds to leave Sirohi territories for good if a state of suspense continues and our grievances remain unredressed. As for the Bara Sahib, not a particle of confidence in him remains in our hearts, for it is he under whose orders the Government forces have ruined us. God alone is our Protector !"

A few important statements :

Having recorded the statement made by the headmen of the village, we examined 115 persons who desposed in supporting the headmen on nearly all points and described their respective losses in details. There were many witnesses whose evidence threw light on specially important points concerning the occurrence. We give below a few of them by way of illustrations:—

1. My name is Poona. My father's name is Raji. I am Bheel by caste. I am about 45 years of age. When the fauj (troops) ransacked our village, I had fled up the hills with my family. In my absence the troops set fire to my two houses which were consumed to ashes. They also burnt 70 maunds of Makki; 50 maunds of Batti; 25 maunds of wheat; 10 maunds of grain and

5 maunds of Samli, together with 5 cots, 6 beddings, 4 grinding mills, clothes and all other articles. A bullock of mine was shot dead while grazing in the field near the village. The troops took away my mare with saddle; 4 goats; 1 shield and two tins full of Ghee I had kept for the marriage of my son. I have six mouths to feed, but there is nothing left to clothe or feed them with, save a few maunds of half burnt corn which we have to eat, but it has no taste and produces pain in the stomach. The soldiers killed my brothers Kana and Lakha who have left behind two widows and eight childrens. They have no bread-winner. All the cash and ornaments they had fell into the hands of the military who burnt all their corn, clothes and other materials. May God shower his wrath on these whites and the Diwan who have ruined us totally and compelled us to live as beggers. Kindly help us or we must die.

My name is Poona. My father's name is Loomba. I am Bheel by caste. My age is about 30. When the military raided our village, I sat on the high ground with Kana, Lakkha and 3 boys in order to beat the drum. As soon as we saw the troops coming, we sounded the drum The boys at once took to heels towards the village while we three remained in the pit a little longer. When firing was commenced by the forces, we too fled The military fired at us in whatever direction we ran. During our struggle for escape was several times hid behind bushes and rocks but were shooted wherever we lay. Consequently, Kana fell after being shot in the side and the head. His brother Lakha turned to lift him up and received five shots. Both succumbed then and there. I fled straight towards the village. I had gone a little further when the troops fired at me from above the hill. I received two wounds in my forelegs but I went on running ahead and escaped with great difficulty. The military burnt my two houses, 32 mounds of corn and one cart-load of hay. They carried away 3.5 bagfuls of wheat, I had concealed in a mountain cavity. I have no food left to eat and no clothes to wear " Please do help me."

Note:—We saw the wounds on the foreleg's of Poona with the bullets still inside.

3. My name is Gomi. My husband's name was Meya I am a widow. My age is about 60 years When I heard the sound of the drum, I fled towards the hills accompanied by Bhadoo another woman. The military approached the village and began firing. Out of fear we hid in a pit behind a rock. Many bullets passed around us. Soon the troops came near As they caught sight of us, they fired at us. Seeing this, I fled towards the hill to save my life. The assilants cried out "There she is going ? There she is going ?" When these words fell on my ears my limbs were paralysed out of fear. Moreover my body is bulky. The soldiers fired many shots one of which penetrated the folds of my lanhga (loins cloth) and struck my thigh. Pressing my wound, I proceeded a few steps up hill and concealed in a pit. I lay there hungry and thirsty the whole day. I returned to the village descending from the hill at sunset and found my house, corn, clothing and all other articles burnt. Nothing remained in the house. Then I begged some rab (flour boiled with sour-milk) of a neighbour and am still living on alms. I am all alone and too old to work. I have no breadwinner. These murderous Rajwallas have ruined me totally. May God destroy their Raj."

Note:—We saw Gomi's Lanhga had several bullet holes and her left thigh had a bullet wound.

4. My name is Bhadoo. My husband's name was Mina Sadhu. My age is about 75. I am alone and a widow. I was hiding in a pit on the hill along with Gomi. When the firing commenced Gomi fled away. I was too old and week to run up the hill and had to lie where I was. Soon a party of eight or seven soldiers came to me and catching hold of my arms, struck twice my back with rifle butt end threw me on the ground. They pulled the string of my Lahnga, tore it and made me quite naked. They searched about my loins by their hands, probably to search some hidden money. After this one of the party asked his companions to leave me saying I was a old woman. With these words the party retreated. I lay in panic the whole day and night in the pit. I descended the next day and found my house, clothes,

grain and every thing also condemned to ashes. Nothing was left in my houses. I live on Rab of burnt flour."

Note:—We saw Bhadoo. She is extremely old feeble and cannot see distinctly. She has a son who lives apart from her.

After taking down statements we saw (i) the pits where the drum beaters had been seated, (ii) the hill tops where the machine guns were set up, (iii) the places in the midest of the hills where the Bheels had concealed their corn (iv) the Banyan tree where the Military had collected their booty and loaded it on carts and camels (v) the spot where the soldiers had burnt the corpses of kanha and Lakkha (vi) the places on the hills where people fell wounded or dead (vii) the burnt thana (viii) the tree across which a bullet had struck Lala Bhil, son of Neta; and lastly the bushes and rocks behind which the drum beaters had halted in the course of their attempt to escape and which bore distinct bullet marks. We then left for Bhoola village.

BHOOLA

We reached Bhoola on the 16th and in the way we saw the places where the Bhils had beated their drums, the path by which the forces entered the village and the point at which a machine gun was kept. We saw something like a wall of stones about fifteen feet long by 3 feet high. We visited the burnt thana and many burnt houses.

In the evening we called the headman of the village and enquired of them about the occurrance. The following is a summary of their statement:—

Statement of headmen :

At evening on Friday the 5th May after the village Balolia had burnt (i) Lakha son of poona Mahajan (ii) Otta Bhahman (iii) Sitaram Modi (iv), Daulat and (v) Bakhta Kunbis came from Rohera to our village Bhoola. They said they had been sent by Diwan Sahib and had been asked to warn us that if we did not give up Eki and pay up revenue as usual, our village would be burnt the

next day as Balolia had been on that very day. We replied, "The Raj is our Master. Let it burn our houses. We won't break our Eki nor shall we pay more than Re. 1-4- and 12 seers per plough at present. Later on, if our community decides any change in the rates, we shall pay according to those rates" Anticipating a raid next day, the majority of villagers climbed up the hills at night taking with them provisions for about fortnight. Forty of us sat in the pits on the hills during the night in order that information be given by beat of drums to all the villagers to ascend the hills with their cattle and children.

"On Satirday the 6th May, as soon as the troops were seen coming from Rohera side, the drums were beaten and the villagers began to flee up the neighbouring hills. The drum beaters too ran from the pits. Machine gunning and rifling set in while the forces were yet about a mile off. Two Bhils were wounded namely, Pania S/o Chatra and Pooria. Both were shot in the Knees. They were picked up by others and taken on the hills Seeing our brethren thus falling some of us fired too. But our bullets did not go further than a hundred yards or two. The forces entered our village at about 7-30 a.m., and divided themselves in three bands. One proceeded towards the north and the other southwards and began to loot the corn we had taken up the hills. The third band remained in the middle and took to burning the houses. Firing continued all along. The houses were set on fire by throwing on them cloth soaked in kerosene oil. Before setting fire the troops would enter the houses and plunder all they could lead on thei -carts and camels and would ignite the remaining materials. Even forlorn houses were not spared. The house belonging to Baddha S/o Daula Bhil was close to the Thana. Baddha's son Ratta, about 10 years old, when he heard the sound of guns slided in to the heap of hay. He was too afraid to ventu e to run up the hills. Ratta was burnt to ashes. The Thana also caught fire. Two cows of Patel Hunsa were shot dead. The burning and plundering lasted till one O'clock in the noon, when the forces retreated.

"As they reached Sanwara village, it was about 4 o'clock when the Bhils got down from the heights. They looked into their

houses and rescued what little they could from the fire. At night, people went back upon the hills where the majority still live for fear lest the Raj should get their houses burnt again if they re-erect them. The Diwan and four Topiwalas (Europeans) had accompanied the troops on the 6th May.

"On May 10th we received the following letter through Ganesh Modi:—

(An English translation of the letter, the original being in the Rajasthanese.)

No. 22

To,
The Headmen,
Grassias and Bhils of Bhoola
and Nanawas etc.

You people following evil advice are rebelling. You have received full punishment. Now no harsh measures will be taken against you. We have been sent by the English Government to help you in getting redress of your grievances. We shall meet at village Wasa tomorrow at 10 a. m. You can bring with you all those Grassias of Bhoola, Nanawas etc., who want to hear our friendly advice. A Government officer, the Diwan of Sirohee, the Tahsildar of Rohera and 10 orderlies shall be with us. There shall be no hindrance in your coming up to or going back from Sanwara. Dated, camp Rohera, the 10th May 1922.

(Sd.)
H. R. N. PRITCHARD
Major
Secretary to the Agent,
Dated 10th May 1922 Governor-General in Rajputana

"At about 4 p. m. on May 11th nearly 100-150 Punches went to Sanwara where two Topiwalas, (Europeans) the Diwan, the Tahsildar of Rohera and 10 Soldiers were present.

The Diwan enquired of us, "On whose side are you, Gandhi's or Government's ?"

Bhils replied : "To Gandhi's."

Diwan : "Tell us if you have seen Motilal."

Bhils : "No, we have not."

Diwan again : (At the Sahib's bidding) "Do you belong to Gandhi or to Government ?"

Bhils : "To Gandhi."

Diwan : "Why did you join the Eki ? What ails you ?"

Bhils : We had grievances and so we joined "Eki". What harm if we joined it ? Owing to Eki, we have given up *thieving, drink and animal food.* *Our grievances are* (1) the Raj collects as revenue part of everything we produce from the soil, (2) right or wrong, we are blamed for theft, (3) the police and Tahsil officers bring false charges against us for extortion and binding us with iron chains torture us in every way possible.

Diwan : Why did you not submit petition to Raj for redress ? Why did you join the Eki ?

Bhils : We did not submit petitions as we were afraid the officers would torment us more.

Diwan : Then you ought to have gone to the Bara Sahib at Abu.

Bhils : We did not go there lest we should be caught and tortured.

Diwan : We shall come baak in eight days and remove your grievances. You can come to Rohera wherever you like. But don't make any disturbance. Go and settle in your village.

"After this conversation was over, the Punches now came back to Bhoola. Now in view of all that has been done to us, we, have resolved not to pay any taxes, even though it may cost the life of the last Bhil child until and unless full justice is done to us. We owe revenue to Raj only for a single harvest and even that too was not due as yet. Still the Raj has brought endless misery on us In some other states where revenue has not been paid for the last four years, no such tyranny was ever exercised as we have been subjected to. It is a sin to live under such a Raj as Sirohee."

After taking the above statement of the headmen about the main occurrence, we examined 138 other Bhils, whose houses had been burnt by the military. The total number of families who suffered from burning of houses was 210. Almost all the witnesses supported the statement of the headmen. We give below the evidence of a few Bhils, as it furnishes valuable material regarding special aspects of the tragedy.

Important statement :

1. My name is Buddha. I am son of Daula and Bhil by caste. When the military attacked our village, all members of my family fled towards the hills. Reaching above. I found all but my son Ratta about 10 years of age who was left behind in the hurry and bewilderment of flight. When the troops began burning and killing he must have concealed himself under the hay which was put on fire. Ratta was burnt to death. When we descended from the hill, we searched for Ratta and found his dead body badly multilated by fire. The troops burnt my house, 25 maunds of corn, 3 cots, 3 beddings, 1 grindidg mill and every other thing in my house. They carried way a calf of mine as loot.

2. My name is Mala. My father's name is Moti. I am Bhil by caste. The troops shot two of my cows dead and took away 5

goats. They also burnt my four houses, 120 mds. of corn, 7 cots, 9 beddings and other articles. Besides these, one pan, several valuable clothes and implements of agriculture were taken away and 7 cartloads of hay burnt. I have suffered to the extent of about 1,200 Rupees, although I owed as revenue to the Raj only about a score of repees. I have 14 mouths to feed, but there is nothing left to maintain them with now.

3 My name is Khema and my Father's name is Buddha. I am a Bhil. The military burnt four houses belonging to me. They carried away 40 maunds of corn; gold and silver ornaments of a value about 300 Rs, 4 cots, 10 beddings, one buffalo and all other articles in my house. I have eight mouths to feed, but nothing remain to live upon.

Our conclusions :

We have given above an account of what we saw and heard at Bhoola and Balolia. The extent of barbarities committed by the forces of the Sirohee State and the British Government and the heavy losses inflicted on the Bhils are too amply clear to need any lengthy comment. There are, however, certain things about which different news have appeared in the press and certain amount of misapprehension seems to have been created in the public mind regarding the mishap An enquiry on the spot alone can give a true prespective of the whole situation Hence, we deem it necessary to mention in brief the conclusions to which we have come in this matter. We hope they will help justice loving people in forming a right view about the mishap.

1. While on our way to Balolia, we found at Keshabganj Railway Station and on our way back at Rohera and Pindwara that the State had deputed special men to enquire of all outsiders who alighted at the above stations and to turn them back if they intended to go among the Bheels. It shows the State disired not only to prevent the truth about Bhoola and Balolia from coming out but also to obstruct the work of philanthropic men viz., distribution of relief among the sufferers.

2. We have no hesitation in saying that we have little doubt about the truth of the statements given by the Bhils firstly, because we found no contradiction on all important points and secondly because speaking the truth is an essential item of the vow of Eki in the observance of which the Bhils have sacrificed their all. A proof -if a proof was needed-of their truthfulness was afforded by the fact that if those present, when evidence was being recorded, stated the loss of an absentee with exaggeration, the real sufferer, when he came later would at once ask us to make the necessary reduction.

3. The condition of the houses as we saw them was one of total destruction, only burnt walls standing, where the structure was a pucca one, the tiles all broken to pieces and the wooden furniture all burned to ashes. At several places the houses were still on fire, when we reached there, although nine days had passed since the occurrence took place. Almost all the houses will have to be built a new. The weather too could not be more unfavourable, being the hottest in the year and to be soon followed by rains. Majority of the villagers have no clothes left besides those on their persons, the rest having been either burnt or looted. The greatest hardship that has befallen the Bhils is the loss of their corn which was either burnt or carried away as plunder. The little that was rescued from fire is unfit for human consumption. To crown all, their grinding mills have been broken and even implements for agriculture have been destroyed or taken away.

4. While the action as a whole was unjustified, there were several episodes which fill the heart of an impartial observer with a thrill of horror and amazement. For example:—

(a) An old women of 60 was shot and wounded knowingly while another older and feebler was outraged most shamelessly by the troops. Their inability to do horm, if not their sex, could have been their protection from molestation at the hands of even savages, not to speak of disciplined forces

(b) The burning to death of a boy and a calf shows that in setting fire to houses no care was taken to ascertain that they were completely empty.

(c) That three cows and one bullock were shot dead under the auspices of a Hindu State is an event which will go down to posterity as the blackest crime against Hinduism. The death by a bullet of Poona Bhil's bullock while grazing in the fields whence all had fled, leaves no room for any other conclusion that it was wilfully killed or that firing was made most indiscreetly.

(d) Even deserted houses and the wooden structures over the wells were consumed to ashes. While we condemn the men who have committed such indeeds blinded by the savage spirit of the moment, we cannot too strongly condemn the criminal negligence of the trusted officers who allowed such things to happen.

5. Taking into consideration everything, each family has suffered an average material loss of Rupees 250 to 300, which is more than fifteen times the amount of revenue dues to the State. The loss in corn alone exceeds the dues by five times. The looting of corn and other materials so much in excess of the dues may be a fit substitute for attachment as the method of collecting outstanding dues from reluctant husbandmen in the eyes of the officers of Sirohee State and Rajputana Ageny, but what justification was there for burning and destroying, thus driving thousands of human beings into long sufferings of hunger, nakedness and want of shelter and means to live ?

6. Several excuses have been put forward as having necessitated the action taken by the Sirohi Durbar and assisted by the British Government viz. (a) witholding of revenue, (b) offering of resistance to State troops, (c) burning of Thana and obstruction of roads, (d) sending of defiant replies to conciliatory proposals. Concerning the above, we sum up the results of our enquiries as below:—

(a) That Revenue is due from the Bhils for only one harvest and that the last date of payment had not expired are proofs that the measures adopted by the State were not only extreme but premature. In the Sirohee State the Bhog or the revenue

in kind is paid by the cultivators when the corn becomes ready. There is no date fixed, as far as we know, for payment. Most of the cultivators had not thrashed out their corn till after the occurence In Rajputana, as a general rule, payment of revenue are made on the last day of jestha (the Hindu month corresponding to May) and thirty days of grace are allowed after that date. At a few places, the date for payment is the Akshya Tritiya (i e., the 18th day of Baisakh) or April. Granting that the Sirohee State wanted an innovation in the dates of payment this year, there were twenty five days to the credit of the Bhils according to the last named date and seventy-eighty days according to the first named date after the occurences which took place on 5th and 6th of May. So much for the date of payment. Now for the quantity. The Bheels we have ascertained were ready to pay up 1-4 and 12.5 seers of corn per plough which they claim to be the old rates, a claim supported by the Pattas or leases. The Bheels had actually collected revenue for payment at these rates and they had informed the Diwan on the eve of the event of their willingness to pay accordingly. In fairness, however, to the State, these rates are not in conformity with modern conditions. On the other hand, there is an equally cogent reason in favour of the Bheels and it is that, removed from civilized society, they do not receive adequate return from the State for the revenues they pay. Even admitting these rates, were not acceptable to the State, the fact still remains that they had intimated to the State the day before the event that they were holding a Punchayat to consider the question of payment of revenue. Over and above all, if the statement of Mansaram Brahman of village Sawa before the Bheels as an emissary of Diwan Sahib on the 4th May be believed-and there is no reason why it sould not be-It is clear he offered to stand as surety before the Diwan for the whole revenue due from Balolia village. This means all the dues as claimed by the State were insured in fact. 'These reasons and the Statement of Mansaram that in reply to his offer Diwanji expressly told him that he wanted to have the vow

of Eki broken, make it plain that the question of revenue was only a secondary consideration and that the military action could not be justified on that account.

(b) While charging the Bheels with offering resistance to troops Government makes no mention of any attack having been made by the Bheels. It, therefore, goes on to prove its charge in other ways. It says the Bheels erected Morchas or fortifications and obstructed roads. As for the first we have seen three of the so-called fortifications. They were nothing but small pits on high ground, each being no more than 6 ft. long, 3 feet broad and equally deep with a line of stones about 3 feet high erected in front. To call these pits fortifications betrays either a grossly ridiculous ignorance of modern science of war or the habit of turning a mole into a molehill, for blindly laying the whole blame on others. Moreover, the pits were not used for an attack. They were meant for accommodating a few people who were furnished with drums and deputed to beat them as soon as they saw the troops advancing on the village in order that the villagers should fly up the hills. There was unanimity in the evidence of the Bhils about the use made of these pits and we actually saw a drum lying broken near a pit outside Balolia. We are convinced the pits were neither fortifications nor any other cause of resistance to troops. There is some truth in the allegation that roads were obstructed as we found a line of stone erected on the way to Bhoola. It was about 4 feet high and 15 feet long, but the road at that place is so wide that even a line of double the dimensions could not have impeded communication. There was no obstruction in Balolia, the village burnt first. Besides this, that was not the only road to Bhoola, and a single obstruction which did not serve its purpose cannot be an excuse for military operations on such a large scale. There is no evidence to show that the Bhils attacked at first. But we find that when their fellow-brothers were being mown down mercilessly some excited Bhils fired a few shots but they failed to reach even half the distance towards the

troops. Hence the silence of the Government on this point and the absence of any casualty among the Government and State ranks, having no substanital charge to make, Government has descended to a vague imputation that the Bhils adopted a defiant attitude, but this has no more value than its old game of giving the dog a bad name and then proceeding to hang it.

(c) We saw the Thanas at Bhoola and Balolia which had obviously been burnt. The Bhils unanimously state that it was the work of the troops. If it was so, the action can be accounted for in two ways, viz, either the State troops purposely set fire to the Thanas in order to create a charge against the Bheels and thus justify the military action. Or the Government troops who were strangers, in their indiscriminate zeal for burning, mistook the Thanas for Bhil houses and fired them. Apart from this allegation of the Bhils against the military, there is another argument, more natural and more pratical. It is this that the Thanas at both the places being close to the Bhil houses and the wind being violent might have caught fire by some bits of ignited wood or straw having fallen on them. At any rate, we are satisfied after careful investigation that the Bhils did not burn the Thanas, as our enquiries prove beyond doubt that the Thanas were burnt simultaneously with the other houses in both the villages whence all the villagers had already fled.

(d) The allegation against the Bhils of sending defiant replies to conciliatory offers if examined carefully in the light of evidence in our possessiom is either wilful distortion or gross misrepresentation of facts. First of all we find no proposals conciliatory in the real sense of the word were sent to the Bhils. To say to them, "Pay up the full revenue as usual, otherwise your villages will be set on fire" is in no sense a proposal of peace or compromise but a challange or a threat. Inspite of this, the reply of the Bhils that they were ever ready to pay Rs. 1-4 and 12.5 seers

per plough and that their Punchayat which was then assembling was contemplating a change in the Bhil demands was not only a conciliatory but also the only fit reply at that time.

7. The news that have followed the event are likely to make the public believe that the Bheels have broken their Eki *(unity)* and that they have agreed to pay revenue at prevailing ra es Our enquiries, however, tell quite a different story. In the light of evidence in our possession, we see the authorities have made a futile and self-conceited attempt to justify an evil means *by describing its really worse end as good. For the State and* Government troops in alliance have uptill now burnt three villages and what is the result? The people of Siawa the village burnt on April 12th have totally refused to pay any dues. The residents of Balolia the village burnt on May 5th not only openly expressed before the *Diwan* and *Major Pritchard* determination to withold old dues but also revenue for two years to come as compensation for their losses. They took an oath, not for breaking Eki, as Government says, but for coming down to the village, as their statement shows. Similarly the Bhils of Bhoola, the village burnt on 6th May, disagreed to pay revenue dues as well as to break Eki. Only a few villages *in the Santapur and Pindwara Tahsils are so few known* to have paid the revenue. But we have evidence to prove that at the former it was fear and not satisfaction and at the latter it was the work of public workers, that induced payments. However, we found that people everywhere were more *discontented than ever and there was burning indignat on* against the State and more so against the British Government for the events of the last few weeks and it will take years to efface the traces of that indignation from the petals of afflicted hears. All seemed resolute to obtain justice or leave Sirohee for ever.

8. We have made sufficiently clear in the foregoing paragraphs that circumstances had not arisen to make military action inevitable and that matters could have been settled peacefully by the

mediation of public workers, had the authorities not lost their patience and refused the offer of public workers to mediate. Allowing, however, for the panic of the authorities and taking their theory of hostile attitude at their worth of it, were the operations on a scale in keeping with the requirements of the situation ? Was due care taken to ensure a sense of moderation and discipline in the behaviour of the troops ? The reply to the first question is afforded by the fact that you cannot expect from wholly illiterate folk every reply to be cleverly worded and every action to be exquisitely cloaked and hence the theory of hostile attitude was highly exaggerated, if not entirely got up. And then, to quote the language of the Bhils, "no less than a cart load of bullets was spent, the volleys coming like swarms of bees." People fleeing in terror—not advancing columns—were subjected to heavy firing for five hours at a stretch. The sense of moderation and discipline exhibited by the troops is evident from the shooting of a woman and three cows, the outraging of an old lady, and the burning of well structures.

9. Despite our earnest efforts to know what peaceful means were employed by the State to settle the matter with the Bhils, we have learnt to the contrary that the authorities have been either terrifying or exciting people by holding out unwise threats. Even the British officer who went to offer friendly advice to the Bhils after ruining them called the latter rebels who had received their due punishment. It is against human nature that any confidence could be reposed in such people. On the other hand no stone was left unturned to throw obstacles in the way of public workers who were trusted by the people and who were trying for a peaceful and reasonable end of the trouble. For example, undaunted by difficulties, a few of the Sevasangha workers had succeeded in including the Grassias of a few villages in Pindwara Tehsil to submit reasonable demands and confine themselves to constitutional methods. The first act of gratitude the State authorities did on getting into touch with the Grassias was to ask them to disassociate themselves from the workers. The latter, inspite of the reluctance of the Grassias to part with them, withdrew in the interests of the Grassias and of

peace and advised while parting, to conclude a separate settlement.

10. Despite careful endeavours, we regret we could not secure the exact number of those wounded and killed. The extent and ruggedness of the scene of operations, and the panic and helplessness caused by the incessant firing were enough to dissuade people from thinking of others. We could ascertain only [redacted] killed and 6 wounded. But some statements show that firing was mainly directed against the large number of Bhils from Mewar, Idar etc., who had assembled for the Punchayat and had fled in dense crowds. Many of these were seen falling but were picked up and carried away by their comrades on their back. It seems it was these unfortunates that suffered most in casualties. The statements prove that even those who fell wounded were shot at. May, even those who turned to lift the wounded were bulletted. Regarding casualties, Government published two varying numbers. The communique of simla dated 7th May speaks of 11 men killed while the Agent Governor-General's reply to Mr. Manilal Kothari's telegram gives the figure 29. Both are silent on the questions of wounded. This shows either truth is being slowly given out to guard against any popular rise of feeling due to a large figure or that information is reaching the official quarters by degrees. The first is more plausible, as neither the Government has any touch with the Mewar and Idar Bhils nor any elaborate efforts appear to have been made for the ascertainment of figures.

11. But the largest figure is supplied by the British officer and he was no other then Major Pritchard, who had gone to Balolia on the 8th May and said to the Bhils, "We have killed fifty and wounded 150 of your men". We were prepared to admit a slight exaggeration in the figures as intended to make an impression on the Bhils. But we cannot reconcile to the fact that a responsible officer like Major Pritchard who is Secy. to the Agent Governor General in Rajputana could have given out a definite figure without being sure of its accuracy, merely to frighten the Bhils. Moreover, he was the officer in charge of the operations.

We have, therefore, no hesitation in accepting the number supplied by him. We look with an eye of suspicion on the burning by the troops of two dead bodies near a well known as Umrao. We fear there were higher casualties some of which at least were tried to be concealed. We saw several other places away from habitation where something or other was burnt. But we were unable to indentify what special thing was burnt there.

2. We give on the next page a table of the losses suffered by the Bhils of Bhoola and Balolia. The table will show the volume of misery caused among them. It is our earnest appeal to every justice loving Indian in general and every Rajasthanee in particular to come forward with a liberal hand to the help of the distressed Bhils and Grassias, who need not only food and clothing but even houses to live in and agricultural implements to proceed with their tilling for the next harvest.

In conclusion our thanks are due to Mr Ishwar Chandra Patel, teacher, Bhil Grassia School, who followed us everywhere and gave valuable help.

(Sd.) SATYABHAKTA.
(Sd.) RAMNARAYAN.

TABLE SHOWING THE LOSSES INCURRED BY THE BHILS OF BALOLIA AND BHOOLA.

No.	Name of village burnt	No. of families affected.	No. of houses burnt or destroyed.	No. of persons affected.	Quantity of corn burnt or looted.	Quantity of hay burnt	No. of animals killed or carried away	Value of other articles burnt or looted.
1.	Bhoola	210	315	1150	4560 Maunds.	400 Cartloads.	25	7,000/-Rs.
2.	Balolia	115	325	650	2525 Maunds.	200 Cartloads.	83	3,000/-Rs.
Total		325	640	1800	7085 Maunds.	600 Cartloads.	108	10,000/-Rs.

इस परिशिष्ट में भील नेता स्वर्गीय मोतीलाल तेजावत से संबंधित कतिपय महत्वपूर्ण आलेखों की प्रतिलिपियां हैं, जिनका उपयोग श्री राम पांडे ने अपनी पुस्तक Agrarian Movement in Pajasthan के लिये किया था. इन आलेखों में केन्द्रीय कारावास, उदयपुर के अंग्रेज सुपरिन्टेन्डेन्ट का श्री तेजावत की कारावास-अवधि से संबंधित प्रमाण-पत्र, न्यायविद् स्व. श्री निरंजननाथ आचार्य, एडवोकेट का प्रसिद्ध लेख "तेजावत की हुंकार", तथा पुलिस रेकार्ड से संबंधित कतिपय आलेख हैं. "तेजावत की हुंकार" लेख "साप्ताहिक नवजीवन", उदयपुर में 2-9-1945 को प्रकाशित हो चुका है. यह लेख तथा इस परिशिष्ट के अन्य आलेख शोध पत्रिका "शोधक" अंक 8, भाग-बी, क्रमांक 23, 1979 में प्रकाशित हो चुका है. इन आलेखों का उपयोग बहुत कम अनुसन्धानकर्ताओं ने किया है, किन्तु निश्चय ही ये स्व. मोतीलाल तेजावत की गतिविधि तथा भील-आन्दोलन पर प्रामाणिक प्रकाश डालते हैं. इस दृष्टि से इनका पर्याप्त महत्व है.

SELECTIONS FROM PRAJAMANDAL PAPERS
RECORDS RELATING TO MOTI LAL TEJAWAT

We are publishing few records relating to Moti Lal Tejawat, who contributed a lot towards Bhil movement in pre-independence times. The Bhils looked at Moti Lal Tejawat as their Messiah who had come for their eternal deliverance. Inspite of all the repressive measures adopted by the States of Udaipur, Dungarpur, Banswara, Sirohi and E the Bhil movement gained momentum under Moti Lal Tejawat who used to dress himself like the Bhils.

The following records are, certificate from Superintedent of Central Jail, Udaipur about his detention in Jail, on article published by Niranjan Nath Acharya in Navjeewan dated 2.9.1945, and others are from police records. These records give information on Bhil movement. These records are very rarely used by the Scholars. I while preparing my book "Agrarian movement in Rajasthan" consulted these records which are certainly valuable and preserved at Rajasthan State Archives in Original.

—Ram Pande

TRUE COPY

Certified that political prisoner Motilal Tejawat had been in the Central jail, Udaipur, from 6th August, 1929, to 23rd April, 1936. During the period his conduct was satisfactory.

Sd/-
V. J. HOGG
(illegible)
Lieut. Colonel, I.M.S.
Superintendent, Central Jail,
Udaipur.

Udaipur,
24th April, 36

श्री मोतीलाल तेजावत की परसनल फाईल पुलिस विभाग से :

आप खास कोल्यारी पी. एस. फलासिया के रहने वाले हैं. आपका जन्म कोल्यारी ग्राम में हुआ. इनका रहन-सहन मामूली है. मामूली पढ़े लिखे हैं. इनका ज्यादातर भील समाज भोमट ऐरिया में रहने से इनकी मान्यता भीलों में विशेष रूप से है. उन्होंने (भीलों ने) इनको देवता के समान मान्यता दे रखी है. भीलों के आपसी झगड़े ज्यादातर तेजावत जी ही निपटाते हैं. जिनको वे स्वीकार करते हैं. इन्होंने श्री विजयसिंह जी पथिक निवासी बिजोलिया के साथ सन् 1932 से काम करना शुरू किया. श्री पथिक जी को तेजावत जी गुरु के माफिक मानकर उनका अच्छा आदर करते थे यानी उनके साथ इनकी सच्ची सहानुभूति है.

ता. 16 से 22 सितम्बर तक, सन् 41, इस संस्था (प्रजा मण्डल) की ओर से राष्ट्रीय सप्ताह मनाया गया जिसमें सभाएं की गई और ता. 22 को चरखा जुलूस निकाला गया जिसके प्रमुख व्यवस्थापक श्री मोतीलाल जी तेजावत रह चुके हैं.

ता. 26-1-47 को आजाद दिवस मनाया गया. उससे आपकी रिहाई बाबत् मेवाड़ सरकार से प्रार्थना की गई

ता. 31-1-47 को आपके रिहा होने की खुशी में आम मीटिंग हुई उसमें श्री मोहनलाल जी सा. सुखाड़िया, श्री माणिक्यलाल जी वर्मा आदि ने श्री तेजावत जी की जीवनी पर प्रकाश डाला और श्री भगवतसिंह जी भण्डारी ने आपके बारे में बताया कि इनको पूरी आजादी हासिल नहीं हैं जब तक उदयपुर ऐरिया से बाहर जाने के स्वतंत्र नहीं हो, पूरी आजादी नहीं है, इसके लिये जोरदार आन्दोलन करना चाहिये. सरकारी बूते नहीं रोक सके.

ता. 4-7-49 को एक मीटिंग ग्राम में की जिसमें आपने कहा पुलिस नाकाबिल है कोई काम की नही है. अपने जंगलात नहीं रहना चाहिये, अनाज बिना अपने लोग भूखे-मरते हैं ऐसी सरकार मे नहीं रहना चाहिये क्योंकि जब सरकार अपना इन्तजाम नहीं कर सकती, अपने को बम्बई प्रान्त मे मिल जाना चाहिये और कोई भी दुकान पर तुम चौकीदारी करो तो दुकानदारों से 40)—रुपये माहवार लेना चाहिये. अगर महाजन लोग बराबर सामान नहीं देवें तो जबरदस्ती लेकर खा जाओ और पुलिस पकड़ने आवें तो तुम मत जाओ और कलम व पुलिस अफसरों को आपने कहा है कि कोई भी मुकदमा हो तो हमारी राय बगैर काम मत करो.

फा. 3 सन् 1949-50	)	को मोजा कोल्यारी मे मीटिंग की काश्त के लिये
19-9-49	)	बिना महसूस नफरी व लगान के अलावा मराड
	)	वगैरा नहीं देने के सिलसिले में आपने भाषण दिया.

फा सं नं. 5 सन् 1949-50) को कोटड़ा कांग्रेस सम्मेलन के सिलसिले में
ई. 24-2-49) कोटड़ा व बीकरणी वगैरा मवाजियात से फी
) घर एक रुपया वसूल किया गया."

फा. 79 सन् 1949-50 ता. 3-1-50 को रक्षामंत्री जी सरदार बलदेवसिंह जी से मुकाम उदयपुर विकास के सिलसिले में आप लक्ष्मी निवास मे मिले.

ता. 13-2-50 को कोटड़ा भोमट सम्मेलन हुआ उसमें आप भाग लेकर भाषण देते हुए अन्य प्रस्ताव पास किये.

ता. 15-3-50 को मारोली मे पोरवता सम्मेलन हुआ उसमें भाग लिया.

ता. 9-4-50 को जयसमद्र की पाल पर राष्ट्रीय सप्ताह मनाने के (उपलक्ष) में मीटिंग हुई उसमें कांग्रेस को वोट देने, बारिश की कमी के कारण लेवी की छूट आदिवासियों से करने वगैरा के भाषण दिये.

ता. 23-4-50 को ऋषभदेव मे मीटिंग हुई उसमें आपने भोमट जनता के लिये खुद का 36 वर्ष जेल मे रहना व भोमट की जनता के प्रति खुद का पूरी सहानुभूति बतलाते हुए भोमट की जनता को भूखे न मरने देने का आश्वासन दिया.

ता. 3-6-50 कस्बा गोगुन्दा में कांग्रेस पार्टी की ओर से मीटिंग हुई जिसमें गोगुन्दा परगना को अकाल क्षेत्र घोषित करने, लगान व लेवी की छूट करने; लेवी व लगान नही देने; मौजूदा मंत्रियों का काम ठीक तरह से नही चलाने बाबत् आपने भाषण दिया.

ता. 11-8-50 को ग्वालियर मे हुए गोली काण्ड के विरोध मे उदयपुर स्काउट आश्रम में मीटिंग हुई जिसमे आपने भाषण देते हुए सरकार की आलोचना की.

ता. 13-8-50 को वल्लभनगर मे कांग्रेस पार्टी की ओर से आम मीटिंग हुई जिसमें पी. सी. सी. चुनाव मे योग्य व्यक्ति को चुनाव में वोट देने व मिनिस्ट्री की बुराई करते हुए आपने भाषण दिया.

ता – –50 को एक मीटिंग गांव में की उसमे बताया है कि जंगलात में से जंगलात वाले लकड़ी नहीं काटने देते.तो उनको मारो और पीटो अगर पुलिस वाले ज्यादती करें तो मुश्कीयें बांध कर उदयपुर ले आवें.

ता. – –51 को आने वाले जनरल इलेक्शन मे आपको सायरा क्षेत्र में कांग्रेस की तरफ से चुनाव मे खड़े किये, मगर बाद मे आपने वापस अपना नाम ले लिया, खड़े नही हुए.

ता. – -51 को पंचायती नोहरा में श्री विजयसिंह पथिक की अध्यक्षता में कम्युनिष्ट पार्टी की तरफ से मीटिंग हुई. उसमें आपने भी भाग लेकर सगठन व ईमानदार आदमी को वोट देने बाबत् कहा.

ता. 13-3-54 को श्री श्री रोशनलाल जी, 18-2-54 ए. एम ता. 26-2-54 को भोमट ऐरिया मे दौरा किया, उस मौके पर पेकरिया पहुंच कर वहां मुस्लिम फण्ड के बारे में बातचीत हुई, उसमे आपने भी भाग लिया.

Copied from the personal file of Motilal Tejawat from the police Department by Dhanlal on 31st May, 1955.

श्री एकलिंगजी :

ता. 25-7-39 ई. को अप डाउन ट्रेन चेक की गई. दिल्ली मारवाड ट्रेन मे नाथद्वारा से कालिदास वकील मय दो आदमी के आया महन्त जी की सराय मे ठहरा.

शाम को चित्तौड़ जाने वाली ट्रेन से हैदराबाद सत्याग्रह के लिये उदयपुर से मोतीलाल तेजावत मय श्री कृष्ण पारीक, भंवरलाल पालीवाल के रवाना हुआ स्टेशन पर पहुंचाने के लिये यमुनालाल जी वैद्य व उनके दवाखाने के दो आदमी हीरालाल, पन्नालाल दीयूप, बगतावरलाल कम्पोण्डर, मीशन होस्पीटल, नोरतन ठेकेदार, मोहनलाल, मोतीलाल तेजावत का लड़का, नीलकण्ठ, सुखलाल व भीलवाड़ा का एक आदमी जा रहा था उसने 1/– रु. कलदार दिया. देवीलाल बाबू कारखाना स्टेशन ने दो 2/– रुपये कलदार दिये और स्टेशन के बाबू लोग भी फूलों की माला पहिनाने में शरीक थे. स्टेशन पर हिन्दू धर्म की व दयाशकर (दयानन्द) ऋषि की जय बोली गई और कोई मुफीद हालात मालूम नही हुए, खेरियत रही ता. 26-7-39.

—चुन्नीलाल शर्मा

पुलिस रेकार्ड से, नकलकर्ता धनलाल, ता. 27-5-55.

OFFICE OF THE ASST. SUPDT. C. I. D.
OF POLICE MEWAR STATE
UDAIPUR

Dated the 29th Aug. 1939

My dear Kr. Sahib,

I beg to inform you that Motilal Tejawat had been to Indore in connection with Hydrabad Arya Satyagrah. He could not go far as he was stopped. He stayed at Indore upto the 17th of August, 1939 and left for Ajmer on the 18th and stayed there with Hari Bhau.

He started from Ajmer on the 27th August and reached kankroli the next morning and stayed there for the whole day and came to Nathdwara by the evening. He has returned here by the morning train. He was welcomed at the Udaipur Station by his son Mohanlal, Shri Krishna Parik, Bhanwarlal Paliwal and Parashram Agrawal.

Kindly instruct the kotwali staff to have a careful look out on his activites. I have also instructed my men to look after his activities very carefully.

with due regards

Yours obediently
L. S. Dashora

To,

Kr. Ranjeet Singhji
Sahib Sahiwala
Supdt. Police, Udaipur City.

Copied by Dhanalal from the police Records DI—1315.

संदर्भ-सामग्री

1– वीर-विनोद : कविराज श्यामलदास

2– श्री मोतीलाल तेजावत की डायरी :

3– भील (सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में) : सम्पादक – श्री नरेन्द्र व्यास

4– Rajasthan Bhils : Edited by Shri N. N. Vyas, Shri R. S. Mann & Shri N. D. Chaudhary.

5– The Second Bhil Tragedy in Sirohi State : A Report by the Representatives of Rajasthan Sewa Sangh, Ajmer – May 192?.

6– देशी राज्यों की जन-जागृति : श्री भगवानदास केला.

7– देशी रियासतों में स्वाधीनता का इतिहास : श्री राजेन्द्रलाल हांडा

8– From Freedom to Democracy : Dr. Ranjeet Singh Darda

9– Rajasthan through the Ages. Vol. I : Dr. Dashrath Sharma

10– Rajasthan's Role in the Struggle of 1857 : Dr. Nathu Ram Khadgawat

11– राजस्थान में राजनैतिक जन-जागरण : डा. के. एस. सक्सेना

12– Loyal Rajasthan in India : Munshee Jwala Sahay

13– हमारा राजस्थान : श्री राम नारायण चौधरी

14– Our Freedom Struggle : Mr. Mazumdar

15– Rajputana Gazettier :

16– Treaties, Engagements and Sanads :

17– हमारा राजस्थान : पृथ्वीसिंह मेहता

18– पूर्व आधुनिक राजस्थान : रघुवीरसिंह

19– Political & Constitutional Developments in the Princely States of Rajasthan. : Laxman Singh

20– राजस्थान स्वतंत्रता के पहले और बाद – : संकलन

21– शहर से दूर : राजेन्द्र अवस्थी

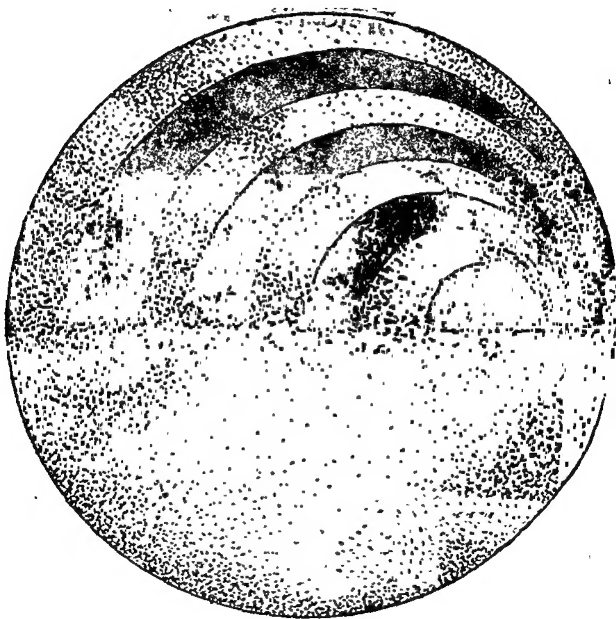
22– आदिवासी भील मीणा : संतोष कुमारी जैन

1– स्व. मोतीलाल तेजावत, उदयपुर	[निबन्ध]	श्री सुमनेश जोशी
2– भील नेता तेजावतजी – स्मरणांजलि	[निबन्ध]	श्री शोभालाल गुप्ता
3– भील नेता श्री मोतीलाल तेजावत	[निबन्ध]	श्री ओंकारलाल बोहरा
4– आदिवासियों के मसीहा	[निबन्ध]	
5– मेवाड़ प्रजामण्डल का संक्षिप्त परिचय	[निबन्ध]	वैद्य यमुनालाल दशोरा
6– मेवाड़ प्रजामण्डल	[निबन्ध]	श्री शोभालाल गुप्त
7– भील आंदोलन	[निबन्ध]	श्री दयालदास दौसावाला
8– कांग्रेस की रियासती नीति	[निबन्ध]	श्री रामनारायण चौधरी
9– मेवाड़ प्रजामण्डल	[निबन्ध]	श्री शंकरसहाय सक्सेना
10– साप्ताहिक रियासती, अजमेर		वर्ष 1939 की फाइल
11– साप्ताहिक नवज्योति, अजमेर		वर्ष 1941–42 की फाइल
12– साप्ताहिक नवजीवन, उदयपुर		वर्ष 1945, 1946, 1947, 1948 की फाइलें.
13– मेवाड़ प्रजामण्डल – मेमोरण्डम		[मुद्रित चर्चा]
14– मेवाड़ सत्याग्रह की प्रगति अक्तूबर 1938 का विवरण.		[मुद्रित चर्चा]
15– जनता से अपील		[मुद्रित चर्चा]
16– अभिभाषण		स्वागताध्यक्ष श्री भूरेलाल बया मेवाड़ प्रजामण्डल का प्रथम वार्षिक अधिवेशन–1941.
17– अजमेर-मेरवाड़ा का बंटवारा		पं. जवाहरलाल नेहरू का वक्तव्य [मुद्रित चर्चा]

18– गीत

श्री केसरीसिंह बारहठ,
पं. गिरिधर शर्मा नवरत्न,
श्री प्रतापनारायण पुरोहित,
श्री माणिक्यलाल वर्मा,
श्री विजयसिंह पथिक,
श्री बलवंतसिंह मेहता,
डा. ब्रजमोहन जावलिया,
श्री अम्बालाल मावगार,
श्री भंवरलाल प्रजापत,
डा. सुधीन्द्र

19– [क] विद्रोह और विप्लव की धारणावाली
[ख] कृषकों की कष्ट-कथाओं के गायक
[ग] देशानुराग की मातृ वंदनाएं
[निबन्ध] डा. मनोहर प्रभाकर





लेखक-परिचय

प्रेमसिंह कांकरिया

जन्म : 6 मई, 1919 ई.

शिक्षा : एम.ए., एल-एल.बी., बी.एड.

राजस्थान राज्य की सेवा में प्रशासन, शिक्षा तथा अनुसन्धान के क्षेत्र में कार्य करने के पश्चात् सेवानिवृत्त.

रचनाएं :

1– माण्डलगढ़ दुर्ग (संस्मरण)

2– भील-क्रान्ति के प्रणेता : मोतीलाल तेजावत

3– भामाशाह (सम्प्रति लेखन प्रक्रियान्तर्गत)

4– स्फुट कविताएं, गद्य गीत, लेख (पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित)

5– सम्पादन – श्री भूरेलाल बया अभिनन्दन ग्रन्थ.

●